ISSN: 2395-7852

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management

Volume 10, Issue 3, May 2023

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 6.551

+91 9940572462 +91 9940572462 ijarasem@gmail.com www.ijarasem.com

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 3, May 2023 |

हिंदी सिनेमा गीतो में समाज चित्रण प्रक्रिया और स्वरूप

Professor (Dr.) Sudhir Soni

Hindi Department, Govt. (PG) College, Malpura, Tonk, Rajasthan, India

सार

1913 में बनी मूक फिल्म राजा हरिश्चन्द्र से भारतीय सिनेमा की शुरुआत हुई। अपने 100 वर्षों से अधिक लम्बे और गौरवशाली इतिहास में भारतीय सिनेमा की कई उपलब्धिया दर्ज हैं। शुरु के दौर में भले ही अधिकांश फिल्में धार्मिक विषयों पर बनाई गईं लेकिन वक्त के साथ-साथ फिल्मों का दायरा संख्या के अलावा विभिन्न विषयों पर भी बढ़ता गया। सामाजिक, सांप्रदायिक, आर्थिक और राजनैतिक विषयों से सम्बंधित सती, विधवा और बाल विवाह, अविवाहित मातृत्व, देवदासी प्रथा, वेश्यावृति, बलात्कार, विवाहेतर सम्बन्ध, आतंकवाद और जातीय हिंसा जैसे कई विवादित विषयों पर काफी प्रभावशाली और संवेदनशील फिल्में बनीं, जिसका भारतीय जनमानस पर काफी प्रभाव दिखाई दिया। ऐसी कुछ एक फिल्मों पर कुछ वर्गों द्वारा तीखी प्रक्रियाएँ हुईं, जो कई बार तोड़-फोड़ और दंगे-फसाद तक भी पहुंची। यह भारत में सिनेमा के महत्व और उससे लोगों के जुड़ाव का प्रमाण है।

जाति एक ऐसा विषय है जिसने हमेशा से ही कई भारतीय बुद्धिजीवी फिल्मकारों को आकर्षित किया। हिंदी के साथ-साथ सभी क्षेत्रीय भाषाओं में भी जाति पर समय-समय पर कई उत्कृष्ट फिल्में बनीं। जाति पर बनी फिल्में भले ही बॉक्स ऑफिस पर ज्यादा सफल नहीं हो पाईं, लेकिन अधिकांश फिल्में कई अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय पुरस्कार पाने में सफल रहीं। जाति पर आधारित सिनेमा का इतिहास छोटा है पर बहुत महत्वपूर्ण है।

सन 1931 में भारत की पहली बोलती फिल्म आलमआरा प्रदर्शित हुई। 1931 से 1940 तक जाति पर आधारित कई महत्वपूर्ण फिल्में बनाई गईं। यही वह दौर था जब भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन अपने चरम पर था। महात्मा गाँधी स्वतंत्रता आन्दोलन और डॉ. आंबेडकर दलितों के सम्मान और अधिकारों के लिए बरतानिया सरकार के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे, लेकिन इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि हिंदी सिनेमा पर शुरू से ही महात्मा गाँधी के विचार हावी रहे जो उस दौर की फिल्मों में साफ दिखाई देता है। महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता आन्दोलन और उसके बाद सामाजिक सुधारों की जिस विचारधारा को प्रोत्साहित किया वह हिन्दू धार्मिक दायरे के भीतर ही सीमित थी।

परिचय

सन 1931-32 के दौरान प्रदर्शित हुई इम्पिरियल फिल्म्स की प्रसिद्ध फिल्म खुदा की शान भी इसी गाँधीवादी दर्शन से प्रभावित फिल्म थी। इस फिल्म के प्रमुख पात्र गरीबदास का किरदार गाँधीजी को ध्यान में रख कर ही लिखा गया था। आरएस चौधरी द्वारा निर्देशित इस फिल्म की कहानी अपने समय के हिसाब से काफी बोल्ड थी। दलित स्त्री रामकी अमीर माणिकदास से प्रेम करती है जो उसका शारीरिक शोषण कर उसे छोड़ देता है। तब माणिकदास का पिता किशनदास रामकी पर जोर-जबरदस्ती करता है। रामकी उसके चुंगल से बचकर एक कोठे में शरण लेती है लेकिन किशनदास उसे ढूढ़कर उस पर हमला करता है लेकिन खुद मारा जाता है। एक मुसलमान युवक रामकी की मदद करता है जिसका अपना एक बेटा है। रामकी एक बेटी को जन्म देती है लेकिन आग में जलकर रामकी और उसे शरण देने वाले युवक की मृत्यु हो जाती है। तब गरीबदास साधु दोनों बच्चो को अपनाकर उनकी देखभाल करते हैं। बच्चे बड़े होते हैं और माणिकदास के कारखाने में ही काम करने लगते हैं। माणिकदास का दिल तब अपनी ही बेटी पर आ जाता है। हालात कुछ ऐसे बनते हैं कि माणिकदास मारा जाता है और गरीबदास साधु को उनकी जमीन वापस मिल जाती है जिसे कभी माणिकदास ने हथिया लिया था। इस फिल्म में गरीबदास साधु का पात्र गाँधीजी से काफी मिलता है। उनके द्वारा बोले गए संवादों के कारण ही इस फिल्म को उस वक्त ब्रिटिश सेंसर से प्रदर्शन की अनुमति मिलने में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा था।[1,2]

सन 1934 में नितिन बोस ने प्रसिद्ध कवि चंडीदास के जीवन पर आधारित इसी नाम से एक फिल्म का निर्माण किया। वैष्णव पंथ के प्रसिद्ध कवि चंडीदास का प्रेम अछूत स्त्री रामी से होता है, जिसका विरोध होने पर वे अपना समाज, जाति और धर्म सब कुछ त्याग कर रामी के साथ गाँव छोड़कर चले जाते हैं। यह फिल्म कोलकाता में उस समय काफी सफल रही।

जाति पर आधारित अगली फिल्म अछूत कन्या थी, जो 1936 में प्रदर्शित हुई। इस फिल्म के निर्माता हिमांशु राय थे जिन्होंने इस फिल्म के निर्देशन के लिए एक जर्मन-फ्रेंज ऑस्टिन को चुना। इस फिल्म की मुख्य भूमिका में उस समय की सुपरस्टार जोड़ी अशोक कुमार और देविका रानी थे। फिल्म की पूरी कहानी फ्लैशबैक में दिखाई गई है जो असफल प्रेमकथा पर आधारित थी। गाँव के रेलवे फाटक के अछूत चौकीदार दुखिया की जवान और खूबसूरत बेटी कस्तूरी का प्रेम गाँव के ब्राह्मण दुकानदार के बेटे प्रताप से है जिसकी वजह से गाँव में खासा तनाव है।हिंसा बढ़ती है और अंततः दोनों रेल के इंजन के सामने आत्महत्या करने को मजबूर हो जाते हैं, तब कहीं जाकर गाँव में शांति होती है। कुछ छोटी-मोटी कमियों के बाबजूद यह फिल्म निर्देशन और तकनीकी दृष्टि से काफी अच्छी थी, जबकि इसके निर्देशक जर्मन थे। देविका रानी का ग्लेमरस रूप और लाउड मेकअप उनके पात्र को अविश्वसनीय बनाते थे। वह अछूत है। वह भी उस समय जब दलित स्त्री को ढंग के कपड़े पहनने का भी अधिकार नहीं था। इस फिल्म के निर्देशक फ्रेन्ज ऑस्टिन अगले ही वर्ष 1937 में उस वक्त हिटलर की नाजी पार्टी के सदस्य बन गए। तब वे भारत में ही बतौर निर्देशक हिंदी फिल्मों में काम कर रहे थे। उन दिनों जर्मनी में कई प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण कलाकार, बुद्धिजीवी, समाजसेवी और खिलाड़ी नाजी पार्टी में शामिल हो रहे थे। 1934 में जर्मनी में नाजी पार्टी का भव्य अधिवेशन हुआ जिसकी कवरेज को एक लम्बी फिल्म में तब्दील कर 1935 में टाइम्स ऑफ विल के नाम से प्रदर्शित किया गया।

इस फिल्म का निर्माण हिटलर की एक करीबी महिला मित्र लेनी राफेलस्ट्राल ने किया था। इस फिल्म में हिटलर के सबसे प्रिय और महत्वपूर्ण विषय-जर्मन जनता की अस्मिता, उनकी उम्मीदें और हिटलर के नेतृत्व के करिश्मे के साथ-साथ एक नए उग्र सांस्कृतिकवादी दर्शन को फिल्म में पहली बार दिखाया गया! हिटलर के इसी दर्शन को व्यापक रूप में फैलाने के लिए जो नीतियाँ और कार्यक्रम तय किए गए उनमें यह फिल्म अहम थी। इस फिल्म का जर्मन जनता पर काफी असर हुआ। फ्रेंट्ज़ ऑस्टिन पर इस फिल्म का कितना असर हुआ और यह फिल्म उनके नाजी पार्टी में शामिल होने का कितना कारण बनी यह तो शोध का विषय है, जिसे ठीक से समझा जाना चाहिए।

भारत में संस्कृति को जरिया बनाकर धर्म के प्रचार की प्रथा पुरानी है, लेकिन संस्कृति का राष्ट्रवाद के बगैर कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। इस 21वीं सदी में संस्कृति की इस नई परिभाषा के आक्रामक प्रसार और स्थायित्व के लिए फिल्मों की भूमिका को समझने के लिए इस फिल्म का अध्ययन महत्वपूर्ण हो सकता है। वर्षों बाद भारत में इसी तरह के उग्र संस्कृतिवाद, जिसे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नाम लोकप्रिय बनाने के प्रयास किए गए, कई जगह दिखाई दिए। कुछ साम्प्रदायिक ताकतों का यह दर्शन आज प्रमुख एजेंडा है। इस दर्शन का भारतीय सिनेमा पर काफी असर हुआ, जिसके पक्ष और विपक्ष में फिल्में बनाई गई!

हालाँकि जाति ही एकमात्र ऐसा विषय रहा, जिस पर यह सांस्कृतिकवाद बेअसर साबित हुआ जिसे इस विषय पर बनाई गई फिल्मों में भी साफ देखा जा सकता है। दरअसल, दलित और आदिवासी संस्कृति का हिन्दू धर्म से कोई वास्ता नहीं है। उनकी अपनी विरासत है जो हिन्दू धर्म से बहुत पुरानी है, जिसकी जड़ें भारत की जमीन पर मजबूती से जमी हुई हैं। इन्हें आसानी से उखाड़ पाना किसी के लिए भी संभव नहीं है। यही अटल सत्य है। इतिहास गवाह है कि सभी धार्मिक और राजनीतिक प्रभाव इस संस्कृति पर बेअसर साबित होते रहे हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का भी अंततः यही हश्र होना तय है।

सन 1940 में निर्माता चंदुलाल शाह ने अस्पृश्यता पर फिल्म बनाने का निर्णय लिया। अछूत नाम की फिल्म को गाँधीजी और वल्लभ भाई पटेल का समर्थन हासिल था। उन्हीं के प्रयास से इस फिल्म का निर्माण हुआ। 1930 में नाशिक के कालाराम मंदिर में दलितों के प्रवेश के लिए किए गए आंदोलन पर डॉ. आंबेडकर और महात्मा गाँधी के बीच बातचीत हुई थी। गाँधीजी ने इस आंदोलन के लिए न केवल अपनी सहमति दी बल्कि उसमें शामिल होने का वचन भी डॉ. आंबेडकर को दिया था, लेकिन ऐन मोके पर गाँधीजी कालाराम मंदिर नहीं पहुंचे। उनकी अनुपस्थिति के बावजूद आंदोलन सफल रहा लेकिन देश भर के दलित गाँधीजी के इस कदम से काफी आहत हुए।[3,4]

फिल्म अछूत कहीं न कहीं इस कसक की भरपाई का चित्रण करती है। फिल्म की कहानी एक अछूत से शुरू होती है जिसे गाँव के कुएँ से पानी लेने की अनुमति नहीं मिलती, जिससे आहत हो वह ईसाई बन जाता है। लेकिन उसकी पत्नी हिन्दू ही रहती है! उनकी बेटी लक्ष्मी को एक अमीर व्यवसायी गोद ले लेता है। उसकी अपनी बेटी सविता और लक्ष्मी दोनों बड़े होने पर एक ही व्यक्ति से प्रेम करती हैं। तब वह व्यवसायी लक्ष्मी को उसके गाँव वापस भेज देते हैं, जहाँ उसकी मुलाकात उसके बचपन के मित्र रामू से होती है और वह उसके साथ गाँव के दलित आंदोलन में शामिल हो जाती है। इसी आंदोलन की हिंसा में लक्ष्मी मारी जाती है, लेकिन दलितों को मंदिर में प्रवेश करने की अनुमति मिल जाती है। इस फिल्म में डॉ. आंबेडकर के आंदोलन के सभी प्रमुख मुद्दे थे जिनमें धर्म परिवर्तन, मंदिर प्रवेश, और पानी के

लिए संघर्ष शामिल हैं। इन्हें दिखाया तो गया है लेकिन ये सभी मुद्दे गाँधीजी के विचार और उनके तर्क पर ही आधारित हैं। हालाँकि अछूत व्यावसायिक रूप से सफल फिल्म थी, फिर भी वर्षों तक जाति पर कोई दूसरी फिल्म नहीं बनी।

इस विषय पर अगली फिल्म बिमल राय की सुजाता थी जिसे 1959 में प्रदर्शित किया गया। बिमल राय भारतीय सिनेमा जगत में उच्च कोटि के संवेदनशील निर्देशक के रूप में जाने जाते हैं। उनकी लगभग सभी फिल्मों को अपने समय की श्रेष्ठ फिल्म होने का गौरव हासिल है। सबसे ज्यादा राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त कर बिमल राय का नाम आज भी सबसे ऊपर है। बिमल रॉय को फिल्मों के सभी क्षेत्रों की गहरी समझ थी। उन्होंने अपना फिल्मी कैरियर कोलकाता के मशहूर न्यू थियेटर्स में बतौर कैमरामैन की थी। बाद में वे निर्देशक बने। हिंदी में बनाई गई फिल्मों में सुजाता उनकी दूसरी फिल्म थी जिससे पहले उन्होंने दो बीघा जमीन जैसी बेहतरीन फिल्म बनाई। लेकिन सुजाता उनकी सबसे कमजोर फिल्म थी, हालाँकि इस फिल्म के सभी पात्र वास्तविक जीवन के करीब थे। स्क्रीनप्ले, संवाद, गीत, संगीत और कलाकारों का उत्कृष्ट अभिनय सभी कुछ अच्छा होने के बावजूद कमजोर कहानी इस फिल्म की सबसे बड़ी कमी साबित हुई जिसका असर फिल्म के निर्देशन पर भी पड़ा। हालाँकि यह फिल्म बंगाल के प्रसिद्ध लेखक सुबोध घोष के उपन्यास पर आधारित थी। स्क्रीनप्ले नोवेंदु घोष जैसे प्रतिभाशाली लेखक ने लिखा था, लेकिन पूरी कहानी जाति के सन्दर्भ में हरिजन सहानुभूति वाले गाँधीवादी दर्शन पर आधारित होने के कारण अपने मकसद से भटक गई। इससे पता चलता है कि बिमल रॉय को जाति के विषय में पूरी जानकारी नहीं थी और वे पूरी तरह से सुबोध घोष के उपन्यास पर ही आश्रित थे। सुजाता की कहानी एक ऐसे दंपत्ति उपेन्द्रनाथ और चारु की है जिन्हें मजबूरी में एक दूधमूही अछूत बच्ची को अपने संरक्षण में रखना पड़ता है जिसकी माँ की मत्यु हो चुकी है और पिता शराबी है। उपेन्द्रनाथ की अपनी भी लगभग उसी उम्र की बेटी है। हालात कुछ ऐसे बनते हैं कि न चाहते हुए भी उन्हें उस अछूत बच्ची को अपने घर में आश्रय देना पड़ता है, लेकिन उसकी देखभाल नौकरानी करती है। उपेन्द्रनाथ उस बच्ची का नाम सुजाता रख देते हैं। तीर्थ यात्रा से लौटती उपेन्द्रनाथ की बुआ एक पंडित को साथ लेकर उनके घर आ जाती हैं। जब उन्हें सुजाता की जाति की सच्चाई का पता चलता है तो वह तूफान खड़ा कर देती हैं। पंडित तो तुरंत ही भाग खड़ा होता है। किसी तरह हाथ-पाँव को जोड़कर बुआ को मनाया जाता है। जब भी बुआ का सामना छोटी-सी सुजाता से होता है वे आगबबूला हो जाती हैं और अपने ऊपर गंगाजल डालकर खुद को शुद्ध करती हैं। वक्त गुजरता है। दोनों बच्चियाँ साथ पलकर बड़ी हो जाती हैं। सुजाता उस घर का एक अभिन्न हिस्सा है, जिसे चौधरी दंपत्ति अपनी बेटी की तरह प्यार करते हैं।

फिर भी वह उनकी अपनी बेटी नहीं बन पाती। कुछ फर्क है जिन्हें सुजाता महसूस करती है, फिर भी अनदेखा करती है, जिसका चित्रण बिमल रॉय ने फिल्म में कई जगहों पर बड़ी खूबसूरती से किया है। घर की इकलौती लाडली बेटी रमा उससे निस्वार्थ प्रेम करती है। हमउम्र होने के कारण दोनों की दोस्ती और अपनापन उनके रिश्ते का सबसे मजबूत पक्ष है। रमा फेशनेबल है। मॉडर्न है। कीमती कपड़े पहनती है। कॉलेज में पढ़ती है और बेडमिन्टन खेलती है। इसके विपरीत सुजाता सस्ती सूती साड़ी पहनती है। पूरे घर की जिम्मेदारी संभालती है। सुबह से लेकर रात तक अकेले ही घर के सारे काम करती है। उसके मन में चौधरी परिवार के लिए कितनी कृतज्ञता भरी है यह साफ झलकती है। इसीलिए वह न तो किसी बात का विरोध करती है और न ही अधिकार जताने की कोशिश करती है। मुख्य पात्र को सिर्फ जनता की सहानुभूति पाने के लिए जरूरत से ज्यादा आज्ञाकारी बनाना इस फिल्म की एक बड़ी कमजोरी है। कहानी एक नया मोड़ तब लेती है, जब फिल्म के नायक अधीर उनके घर आते हैं। अधीर गाँधीवादी है, खादी का कुर्ता-पजामा पहनता है और ढेर सारी किताबें पढ़ता है। चौधरी दंपत्ति अधीर को काफी पसंद करते हैं। वह उनकी बुआ का पोता है। वे रमा से उसकी शादी करना चाहते हैं। लेकिन अधीर को रमा के बजाए सुजाता पसंद आ जाती है, जिसका रमा पर तो असर नहीं पड़ता पर उसकी माँ चारू को, अधीर की बजाए सुजाता पर बहुत गुस्सा आता है। अधीर की दादी भी इस रिश्ते का बहुत विरोध करती हैं। उसे तरह-तरह की धमकियाँ भी देती हैं पर अधीर अपने फैसले पर अड़ा रहता है। सुजाता अधीर को चाहते हुए भी उसे स्वीकार करने की हिम्मत नहीं जुटा पाती। फिल्म के एक दृश्य में अधीर नदी किनारे गाँधीजी की मूर्ति के पास खड़े होकर सुजाता को छुआछूत के विरोध में गाँधीवादी दर्शन पर बड़ा-सा व्याख्यान भी देता है। उसे समझाने की कोशिश करता है कि जाति से कोई ऊँचा या नीचा नहीं हो जाता। सब इंसान बराबर हैं। लेकिन उसे यह नहीं बताता कि वह उससे सिर्फ इसलिए शादी करना चाहता है क्योंकि वह उससे बहुत प्यार करता है। दया और सहानुभूति के बजाए प्रेम उनके रिश्ते का आधार है।

इस फिल्म का अंत बहुत नाटकीय है। चारू सीढ़ियों से गिर जाती हैं। सिर पर गहरी चोट लगने की वजह से बहुत खून बह जाता है तब खून की जरूरत पड़ती है। उस समय पूरे घर में सिर्फ सुजाता का ही खून चारू के खून से मेल खाता है, जिसका खून चढ़ाने पर ही चारू की जान बचती है। इस घटना के बाद चारू मन से सुजाता को अपनी बेटी स्वीकारती है और अधीर से उसकी शादी के लिए राजी हो जाती है। 1959 जब यह फिल्म प्रदर्शित हुई थी तब गाँधीजी की मृत्यु को काफी वक्त गुजर चुका था और उनके आंदोलन का असर भी लगभग खत्म हो चुका था लेकिन डॉक्टर आंबेडकर का क्रांतिकारी आंदोलन पूरी तरह जीवित था। हालाँकि डॉक्टर आंबेडकर की भी तीन वर्ष पहले 6 दिसंबर, 1956 को मत्यु हो गयी थी लेकिन उसी वर्ष अपनी मृत्यु से मात्र डेढ़ महीना पहले 14 अक्टूबर को उन्होंने हिन्दू धर्म त्याग कर बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली। उनके साथ ही 5 लाख दलितों ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।[5,6]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 3, May 2023 |

दुनिया के इतिहास में इसे, उस वक्त की सबसे बड़ी क्रांति माना गया जिसका असर देश भर में देखने को मिला। 1960 के आम चुनाव में आरपीआई ने एक युवा नेता बीपी मौर्या के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश से लोकसभा की 16 सीटें जीत ली जो आज उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी के राज की बुनियाद है। डॉक्टर आंबेडकर के जीवन काल में जो संभव नहीं हो पाया उनकी मृत्यु के बाद हुआ। उस वक्त देश भर में बदलती हुई दलित चेतना की तरफ बिमल रॉय जैसे जानकारी रखने वाले निर्देशक की नजर कैसे नहीं गयी? अगर वे इस ओर जरा-सा भी ध्यान देते तो कम से कम दया और सहानुभूति वाले गाँधीवादी दर्शन के बजाय दलितों की अपने आत्म सम्मान और अधिकारों के लिए बदलती सोच पर केन्द्रित फिल्म बनाते, जिसकी आग आज तक ठंडी नहीं हुई। तब शायद वे सुजाता के मुख्य किरदार को ज्यादा न्यायसंगत बना पाते जो जरूरत से ज्यादा हीनभावना से ग्रस्त मजबूर और बेचारी नहीं होती। सुजाता बिमल रॉय की फिल्मों की महिला पात्रों में सबसे कमजोर है। फिर भी इस फिल्म को कई पुरस्कार मिले। बिमल रॉय को श्रेष्ठ निर्देशन के लिए और नूतन को सुजाता के रोल के लिए राष्ट्रीय पुरस्कारों की श्रेणी में रजत पदक दिए गए। उसी वर्ष बिमल रॉय और सुबोध घोष को फिल्म फेयर अवार्ड भी मिले। चार श्रेणियों में फिल्म फेयर अवार्ड जीतने वाली उस वर्ष यह अकेली फिल्म थी।

जिस समय सुजाता फिल्म का निर्माण हुआ उस काल को हिंदी सिनेमा का स्वर्णयुग कहा जाता है। जब कई महत्वपूर्ण विषयों पर बेहतरीन फिल्में बनीं। इस दौर को उन गीतकारों, संगीतकारों, कलाकारों और निर्देशकों ने मिलकर यादगार बनाया, जिनका सम्बन्ध किसी न किसी आन्दोलन से था। साहिर लुधियानवी, कैफी आजमी, शेलेन्द्र, बलराज साहनी, ख्वाजा अहमद अब्बास, राजेंद्र सिंह बेदी, जाँ निसार अख्तर जैसी कई हस्तियाँ, जिनका संबंध इप्टा से था और जो वामपंथी विचारधारा से जुड़े हुई थीं, जिनकी बदौलत हिंदी सिनेमा में आजादी के बाद गरीबी, बेकारी और भूख से जूझते आम आदमी के संघर्षों का चित्रण ईमानदारी से संभव हो पाया। लेकिन जाति जैसे गंभीर और जरूरी विषय पर एक भी फिल्म नहीं बनाई गई।

सत्तर के दशक में न्यू वेव सिनेमा का दौर आया, जब कम खर्च पर उद्देश्यपूर्ण फिल्में बनाने का चलन शुरू हुआ जिसकी पहचान आर्ट फिल्म के नाम से हुई। ऐसी फिल्में जिन्दगी के सबसे करीब थीं। आम आदमी के संघर्षों के साथ-साथ स्त्री-पुरुष सम्बंधों पर भी कई बोल्ड फिल्में बनीं।यह वह वक़्त था जब पूरी दुनिया में बदलाव का दौर चल रहा था। अपनी निराशा और कुंठा से जूझता युवा वर्ग दुनिया भर में जगह-जगह बन्धनों को तोड़ रहा था। कहीं संगीत तो कहीं नशे में अपनी आजादी ढूढ़ रहा था। अमेरिका में साम्यवादी और श्यामवर्णीय आन्दोलन ने तब तक पूरी दुनिया को अपनी तरफ आकर्षित कर लिया था। लगभग उसी वक़्त भारत में भी दलित पैंथर की शुरुआत हुई।

दलित पैंथर के सभी सदस्य उच्च कोटि के साहित्यकार भी थे, जिनके साहित्य ने स्थापित भारतीय साहित्य जगत में बैचेनी पैदा की और प्रतिष्ठित साहित्यकारों को भी अपने अंतर में झाँकने पर मजबूर किया। दलित साहित्य के इस आन्दोलन के कारण ही देश के कई भागों में सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव की प्रक्रिया शुरू हुई। हिंदी सिनेमा में भी इसका जबरदस्त प्रभाव दिखाई दिया, जब इस विषय से जुड़ी कई बेहतरीन फिल्में बनीं। श्याम बेनेगल ने हिंदी में और गिरीश कर्नाड ने कन्नड़ में कई प्रभावशाली फिल्में बनाई। श्याम बेनेगल ने हमेशा से ही अपने आप को समाज से जुड़ा हुआ व्यक्ति माना। समाज में होते बदलाव और उससे उत्पन्न आक्रोश को समझने का प्रयास जारी रखा। उन्होंने कई बार इस बात को खुले रूप से स्वीकार किया कि समाज में होने वाले बदलाव से वे अछूते नहीं रह सकते, क्योंकि वे भी उसी का हिस्सा हैं और वे हर बदलाव का समर्थन करते है। उन्होंने विशेषकर स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार, जाति और सांप्रदायिक हिंसा के विरोध में हिंदी सिनेमा को सबसे ज्यादा और सबसे प्रभावशाली फिल्में दी। श्याम बेनेगल की फिल्मों में वह सभी कुछ था जो एक अच्छी फिल्म की जरूरत होती है। अच्छी कहानी, स्क्रीन प्ले, संवाद, छायांकन, एडिटिंग और उत्कृष्ट निर्देशन। श्याम बेनेगल को भी बिमल रॉय की तरह सिनेमा के हर क्षेत्र में महारत हासिल थी जो उनकी हर फिल्म में दिखाई देता है। अंकुर उनकी पहली फिल्म थी। दरअसल, इसी फिल्म से हिंदी सिनेमा में परिवर्तन का अंकुर फूटा। इस फिल्म की कहानी काफी बोल्ड थी। अमीर ज़मींदार का एकलौता बेटा सूर्या शहर से पढ़ाई ख़त्म कर घर वापस आता है। पिता उसका विवाह उसकी मर्जी के खिलाफ कर उसे गाँव में जमीन की देख-रेख करने भेज देते हैं क्योंकि वे मानते हैं कि ताकतवर पुरुष वही है जिसके पास जमीन है। स्त्री की कोई कीमत नहीं होती क्योंकि उसके पास जमीन या कोई संपत्ति नहीं होती। गाँव में सूर्या की मुलाकात दलित स्त्री लक्ष्मी से होती है जो उसके यहाँ काम करती है, जिसका पति गूँगा-बहरा और शराबी होता है। एक दिन वह उसे छोड़ कर भी चला जाता है। तब सूर्या लक्ष्मी को अपने घर में रख लेता है। गाँव में दबी-जबान में इसका विरोध भी होता है। सूर्या इसकी ज्यादा परवाह नहीं करता।एक दिन अचानक सूर्या की पत्नी आ जाती है। सूर्या लक्ष्मी को तुरंत भगा देता है, जबकि उस वक्त वह उसी से गर्भवती है। लक्ष्मी अपनी झोंपड़ी में आ जाती है। उसका पति भी वापस लौट आता है। यह जानकर कि वह माँ बनने वाली है, वह बहुत खुश हो जाता है और इसी खुशी-खुशी में काम करने के लिए ज़मींदार के घर की तरफ जाता है। उसे दूर से आता देख सूर्या बहुत डर जाता है। डरा हुआ सूर्या बगैर कुछ भी जाने उसे बहुत मारता है। दूर से देखती लक्ष्मी अपने पति को बचाने के लिए बड़ी मुश्किल से दौड़ कर आती है और गुस्से में चिल्ला कर बताती है कि उसका पति तो सिर्फ काम पर वापस आया था। सूर्या उसका सामना नहीं कर पाता और घर के अंदर भाग जाता है। इस फिल्म का अंत एक छोटे-से बच्चे के पत्थर मारने से होता है जो कमजोरों के विरोध का चित्रण है। इस फिल्म के लिए शबाना आजमी को कई पुरस्कार प्राप्त हुए जिनमें सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय पुरस्कार भी शामिल है। श्याम

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 3, May 2023 |

बेनेगल को निर्देशन के लिए रजत कमल प्रदान किया गया।[7,8] फिल्म अंकुर के बाद श्याम बेनेगल ने जाति पर आधारित कुछ अन्य फिल्में भी बनाई जिनमें मंथन, जो गुजरात में सहकारी दूध उत्पादन के क्षेत्र में दलितों की भागीदारी पर आधारित थी। यह फिल्म काफी चर्चित रही। श्याम बेनेगल की सभी फिल्में किसी न किसी सामाजिक विषय पर ही आधारित रहीं। उनकी एक अन्य फिल्म सुसमन इक्कत के हथकरघा कारीगरों के जीवन और संघर्ष की फिल्म थी जो इक्कत का कपड़ा बुनते हैं। विश्वप्रसिद्ध और बेहतरीन माने जाने वाले इन बुनकरों का समावेश पिछड़ी जाति में होता है जो अछूत नहीं है, पर उनका जीवन अछूतों से अलग भी नहीं।

अस्सी का दशक हिंदी सिनेमा के लिए सामान्य रहा, जहाँ अधिकतर फिल्में कोई विशेष छाप नहीं छोड़ पाईं, लेकिन इसी दशक में कई प्रसिद्ध निर्देशकों ने जाति पर आधारित विषयों पर अच्छी फिल्में बनाई जिनमें सत्यजीत रॉय की सद्गति भी शामिल है। यह प्रेमचंद की एक प्रसिद्ध कहानी पर आधारित थी। सत्यजीत रॉय की बंगाल में बनी सभी फिल्में बेमिसाल हैं। उनकी तुलना में यह फिल्म कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़ पाई। सत्यजीत रॉय की छाप इस फिल्म में दिखाई नहीं दी।

दूसरी फिल्म कांती लाल राठौर की रामनगरी जो नाइयों के जीवन पर केन्द्रित थी। अच्छी होने के बावजूद फिल्म लोगों तक नहीं पहुँच पाई।

इसी दौरान गौतम घोष द्वारा निर्देशित फिल्म पार प्रदर्शित हुई। यह फिल्म बिहार में रहने वाली मुसहर जाति के जीवन और संघर्ष की कहानी है। इस फिल्म में मुसहर जाति के दिल दहलाने वाले जीवन को दिखाया है। पार निस्संदेह जाति पर बनी सशक्त फिल्म है। इस फिल्म को कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार मिले।

सन 1985 में तीन अन्य फिल्में जिनमें प्रकाश झा की दामुल, प्रदीप कृष्ण की मैसी साहब, जेपी दत्ता की गुलामी प्रदर्शित हुई। दामुल उस दौर की कहानी है जब बिहार में सवर्ण ज़मींदारों के जुल्म से तंग पंजाब की ओर पलायन करता गरीब, भूमिहीन, दलित, मजदूर बिहार शरीफ में दर्दनाक जनसंहार का शिकार हुआ था। मैसी साहब मध्य प्रदेश के गरीब आदिवासियों के जीवन को दर्शाती फिल्म थी जिसमें बुकर पुरस्कार से सम्मानित प्रसिद्ध लेखिका अरुंधति रॉय ने भी अभिनय किया था। एक अन्य प्रसिद्ध फिल्म गुलामी जिसमें धर्मेन्द्र, मिथुन चक्रवर्ती, नसीरुद्दीन शाह, स्मिता पाटिल और अनीता राज जैसे कई बड़े सितारों ने अभिनय किया था। इसमें राजस्थान के गाँवों में शिक्षा से दलितों में आ रही जागृति और कर्ज के बोझ से दबे किसानो पर होने वाले अत्याचार की कहानी थी। यह फिल्म राजस्थान के एक गरीब दलित शिक्षक की आत्मकथा पर आधारित थी। गुलामी भले ही बड़े बजट की फिल्म थी फिर भी इस फिल्म में दलितों पर होने वाले अत्याचार, उनके संघर्ष और आक्रोश का चित्रण पूरी ईमानदारी के साथ किया गया। इस फिल्म के बाद ही हिंदी व्यवसायिक फिल्मों में जाति पर आधारित व्यवसायिक फिल्मों का चलन शुरू हुआ। इसी दौरान बनी एक अन्य फिल्म चक्र जिसे रविन्द्र धर्माधिकारी ने बनाया और वह काफी चर्चित रही। मुंबई की झोपड़पट्टी में रहने वाले लोगों के रोजमर्रा के संघर्षो पर आधारित यह फिल्म एक अच्छी फिल्म मानी गई।

नब्बे के दशक में इस विषय पर कई अच्छी फिल्में बनीं जिनमें दिशा एक बेहतरीन फिल्म थी जो कन्नड़ भाषा के प्रसिद्ध लेखक यूआर अनंतमूर्ति की प्रसिद्ध कहानी घटश्राद्ध पर आधारित थी। हिंदी में निर्देशक अरुण कौल ने और कन्नड़ में गिरीश कासरवल्ली ने बनाया। फिल्म दिशा को फ्रांस में सर्वोत्तम फिल्म की श्रेणी में सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

सन 1994 में के. विक्रम सिंह द्वारा निर्देशिक फिल्म तर्पण एक लोककथा पर आधारित थी जिसका चित्रण भी लोकशैली में ही किया गया था। तर्पण उस गाँव की कहानी है जहाँ कुएँ की सफाई के दौरान ठाकुरों द्वारा दलितों पर किए गए अत्याचार अलग-अलग पत्रों की शक्ल में एक-एक कर बाहर निकल कर आते हैं और अपनी कहानी कहते हैं। सन 2000 में जाति पर आधारित दो फिल्में प्रदर्शित हुईं – बवंडर और डॉक्टर आंबेडकर। बवंडर का निर्देशन डॉ. जग मुंदरा ने किया और पटकथा सुधा अरोरा ने लिखी थी। यह फिल्म राजस्थान में हुए चर्चित भंवरी देवी बलात्कार और उसके बाद की कानूनी प्रक्रिया पर आधारित थी। भंवरी देवी के दोषियों को निर्दोष साबित कर दिया गया था। डॉक्टर अम्बेडकर की जन्म शताब्दी के अवसर पर केंद्र और महाराष्ट्र राज्य सरकार द्वारा दी गई वित्तीय सहायता से बनाई गई डॉक्टर आंबेडकर एक महँगी और बड़ी फिल्म थी। इस फिल्म का निर्देशन जब्बार पटेल ने किया था। यह फिल्म डॉक्टर आंबेडकर के जीवन संघर्ष पर आधारित थी। इसमें डॉक्टर आंबेडकर के किरदार के लिए प्रसिद्ध मलयाली अभिनेता ममूटी को सर्वश्रेष्ट अभिनेता का राष्ट्रीय पुरुस्कार प्रदान किया गया।[9,10]

सन 2006 में बनी फिल्म एक धुन बनारस की यूं तो जाति पर आधारित थी लेकिन बौद्धधर्म और हिन्दू धर्म के सहअस्तित्व के अंतरद्वन्द्व के विषय को दिखाने की कोशिश में निर्देशक पंकज पराशर भ्रमित हो गए। मूल कहानी एक प्रेमकथा है जो एक भंगी स्त्री द्वारा पालित अनाथ

युवक सोहम और अमीर सवर्ण स्त्री स्वेताम्बरी की प्रेम कहानी है। सोहम को मार दिया जाता है। स्वेताम्बरी सब कुछ त्याग कर संन्यास ले लेती है लेकिन सोहम को अपने जेहन में जिंदा रखती है और जानती है कि सोहम की हत्या किसने की लेकिन मौन रहती है।

अगले साल 2007 में बनी एकलव्य द रॉयलगार्ड का निर्देशक विधु विनोद चोपड़ा ने किया था। इस फिल्म की कहानी कॉम्प्लेक्स होने के बावजूद काफी मनोरंजक थी। इस फिल्म को भारत की ओर से ऑस्कर में विदेशी भाषा की श्रेणी में भेजा गया, जिसके चयन को लेकर काफी आलोचना हुई। हालाँकि यह फिल्म ऑस्कर नहीं जीत पाई लेकिन यह नियोग जैसे विषय पर बनाई गयी एकमात्र हिंदी फिल्म है। नियोग का जिक्र हिन्दू धार्मिक मान्यताओं में है, जिसके अनुसार दलित स्त्री ब्राह्मण पुरुष से गर्भधारण कर सकती है, लेकिन ब्राह्मण स्त्री का दलित पुरुष द्वारा गर्भधारण करना वर्जित है। इस प्रक्रिया से उत्पन्न संतान को हिन्दू समाज में चांडाल का दर्जा दिया गया है। इस फिल्म का प्रमुख पात्र राजकुमार दलित गुलाम का बेटा है। ऐसा किन परिस्थितियों में हुआ यह फिल्म प्रामाणिक रूप से स्थापित नहीं कर पाई। इस गंभीर सच्चाई का छूट जाना इस फिल्म की सबसे बड़ी कमी है। सन 2011 में प्रदर्शित निर्देशक प्रकाश झा की चर्चित फिल्म आरक्षण अपने नाम के अनुरूप ही आरक्षण के मुद्दे पर केन्द्रित थी, लेकिन पूरी फिल्म आरक्षण के लिए सामाजिक न्याय के बजाय उसकी उपयोगिता के पक्ष में खड़ी दिखाई देती है। यह बुनियादी तौर पर ही गलत तर्क है। यह आश्चर्य की बात है कि जिस निर्देशक ने अपने शुरुआती दौर में ही दामुल जैसी संवेदनशील और सटीक फिल्म बनाई वह आरक्षण जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे का न्यायसंगत चित्रण अपनी इस फिल्म में नहीं कर पाया। संविधान द्वारा आरक्षण के प्रावधान का आधार सामाजिक और शैक्षिणिक पिछड़ापन है। संविधान निर्माताओं ने जाति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की जमीनी सच्चाइयों को आधार मानकर ही आर्थिक पिछड़ेपन को आधार स्वीकार नहीं किया, लेकिन प्रकाश झा ने इस महत्वपूर्ण तथ्य को दरकिनार कर पूरी फिल्म को आरक्षण बनाम कंपटीशन फीस के मुद्दे पर ही उलझा दिया। इसकी वजह से फिल्म तो कमजोर बनी ही, आरक्षण जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे की गंभीरता में भी कमी आई। फिल्म को व्यवसायिक रूप से सफल बनाने की होड़ में प्रकाश झा ने सरकार के बजाय मनोरंजन को प्राथमिकता दी लेकिन इस बात का ध्यान उन्हें रखना चाहिए था कि भले ही सरकारों पर मनोरंजक फिल्में बनाई जा सकती हैं, लेकिन मनोरंजन के लिए ईमानदार सरकारों से समझौता नहीं किया जा सकता। इस फिल्म से देश भर में गलत संदेश गया है, जिसका असर आने वाले समय में किसी न किसी रूप में दिखाई दे सकता है। सिनेमा का उद्देश्य मनोरंजन हो या सरकारों की आलोचना वह हमेशा ईमानदार दृष्टिकोण की मांग करता है। दुनिया भर में आज भी विवाद जारी है लेकिन सिनेमा की ताकत निर्विवाद है। फिल्म निर्माताओं का यह समझना भारत जैसे देश के लिए जरूरी है, जहाँ जाति, धर्म और लिंग जैसे गंभीर मुद्दों पर बगैर किसी वाजिब कारण के भी भयानक दंगे-फसाद हो जाते है!

विचार-विमर्श

हिन्दी फिल्म संगीत आज अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए हैं। शब्द (साहित्य) और स्वर (संगीत) का अद्भुत समन्वय इन गीतों में मिलता है। जब से हिन्दी फिल्मों का आरम्भ हुआ है, तब से इन फिल्मों में गीत अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं। बॉलीवुड फिल्मों की पहचान ही इन गीतों से होती है। यहाँ तक कि कई बार फिल्मों की पटकथा से भी अधिक गीत याद रहते और पसंद किये जाते हैं। वास्तव में ये गीत फिल्मों की कहानी को गति और दिशा देने का भी ख़ास काम करते हैं। इन गीतों के माध्यम से दृश्य में भावप्रवणता बढ़ती ही है साथ ही घटना और स्थिति का सफल सम्प्रेषण होता है। इस शोध कार्य की परिकल्पना भी सावन और बरसात के ऊपर आधारित इन। गीतों के माध्यम से संप्रेषित होने वाले अलग-अलग मनोभावों को समझने का प्रयास हुआ है। यह जानने की कोशिश की गयी है कि कैसे एक गीत जब एक विशेष सिचुएशन के लिए तैयार किया जाता है तब उसकी प्रक्रिया कैसी होती है। गीतकार और संगीतकार का उचित समन्वित प्रयास एक गीत को कालजयी बना देता है। सावन और बरसात फिल्मकारों का प्रिय विषय रहा है तो इसके आधार पर भावों का विविध आयामी प्रतिबिम्बन कैसे होता है। इस कार्य को करने के लिए के मूल रूप से तो गुणात्मक शोध-प्रविधि का ही प्रयोग किया गया है साथ ही इस में सन्दर्भ की पुष्टि के लिए वर्ष का उल्लेख किया गया है। गीतकारों के नामों का उल्लेख अधिकतर गूगल साइट्स के द्वारा ही उपलब्ध हुआ है और कुछ साहित्य पुस्तकाकार में भी प्राप्त हुआ।[11,12]

हिन्दी फिल्मी गीतों की प्रसिद्धि और लोकप्रियता से हम सभी वाकिफ़ हैं। ये गीत रंग-बिरंगे चित्रों की तरह हमारे जीवन के कैनवास में दूर दूर तक बिखरे हुए एक खूबसूरत कोलाज बनाये हुए हैं। जितने भी रंग इंसान की कल्पना में संभव हो पाए हैं उन सभी की छवि इन गीतों में इतनी सपष्टता से दिखाई देती है कि कभी कभी ये वास्तविकता से भी बेहतर नज़र आते हैं। कोई भी गीत शब्द (साहित्य) और स्वर(संगीत) के सम्मिलन से बनता है। फिल्मी गीतों में और भी कई आयाम होते हैं। वहां अभिनय, दृश्यांकन और चित्रांकन आदि भी होता है। वैसे तो फ़िल्मी गीत हमारे सुनने का विषय होते हैं परन्तु फिल्मी गीत अक्सर गीत के साथ-साथ अभिनेता और दृश्य के कारण भी पसंद और याद किये जाते हैं। किसी गीत की अनुभूति उसके दृश्य को याद करके और भी तीव्र हो जाती है। संगीत और शब्द का सुन्दर समन्वय कुछ गीतों को कालजयी बना देता है तो कुछ गीत एक विशेष फिल्म के लिए और कुछ समय के लिए ही बने होते हैं जो कुछ समय बाद अपना प्रभाव छोड़ देते हैं।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 3, May 2023 |

यहाँ यह ध्यातव्य है कि ऐसे कौन से तत्त्व या विशेषताएं होती है जिसके कारण कुछ फ़िल्मी गीत इतने प्रचलित और लोकप्रिय हो जाते हैं जैसे कि लोकगीत। उनकी प्रसिद्धि बिल्कुल उसी प्रकार हो जाती है जैसे कि एक प्रांत या अंचल के लोकगीत सभी को लुभाते हैं और वह सभी को मुहं जबानी याद भी रहते हैं। लोकगीत मानवीय संवेगों की नैसर्गिक अभिव्यक्ति होती है और इसलिए वे ह्रदय की गहराइयों से निसृत होते हैं और ह्रदय तक अनायास ही पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार से जो फ़िल्मी गीत लोकप्रिय या बहुत पसंद किये जाते हैं उनकी ख़ासियत भी यही होती है कि वे शब्दों और संगीत के माध्यम से दिलों पर राज़ करते हैं। दोनों में अंतर यह है कि जहां लोकगीत ह्रदय की सहज-स्वाभाविक मधुर अभिव्यक्ति होती है वही फिल्मी गीतों में कविता-छंद-संगीत के विधान का विशेष ध्यान रखा जाता है और दूसरे ये फिल्म की घटना या भाव को चित्रांकित करते हैं। इसलिए फ़िल्मी गीतों की संरचना लोकगीतों की तुलना में थोड़ी जटिल होती है। इन गीतों में गीत, संगीत और गायक इन तीनों की अहम् भूमिका होती है। इसके अलावा प्रत्येक फिल्म की पटकथा और उसके विभिन्न प्रसंग गीतों के भाव और संगीत दोनों के लिए ज़रुरी होते हैं। "हर फिल्म का अलग मिजाज़ होता है, जुदा अंदाज़ होता है, अपना माहौल होता है। हर फिल्म में कुछ ख़ास किरदार होते हैं। गीतकार फिल्म के माहौल और किरदारों के मुतामिक ही गीत लिखता है।" (हिन्दी फिल्मो के गीतकार, भार्गव अनिल,पृ .5)

अब बात आती है, ह्रदय से ह्रदय तक पहुँचने की, तो यह प्रश्न उठता है है कि गीतों में ऐसी क्या बात होती है, जिससे वह ह्रदय की वस्तु बन जाता है। किसी भी गीत का स्वरुप संगीत के बिना अधूरा है। शब्द उसका शरीर और मन है तो संगीत उसकी आत्मा बन जाता है। गीतों का मनुष्य पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है और उसका मुख्य कारण इन गीतों में व्याप्त संगीत है। कई बार धुनें तो याद रहती हैं और शब्द याद नही आते। इसका अर्थ यह हुआ कि संगीत कही हमारे गहन अवचेतन मन में विद्यमान रहता है जो हमे हमेशा याद रहता है। मनुष्य के भावों की अभिव्यक्ति के विभिन्न स्वरूपों में संगीत एक महत्त्वपूर्ण मानव व्यवहार है। यह स्वर और ताल के माध्यम से भावो-विचारों को अभिव्यक्त करता है। इसलिए गीतों में व्याप्त संगीत का हमारे विभिन्न मनोभावों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। कुछ गीतों में संवेदनाओं का पुट इतना जबरदस्त होता है कि कृपण से कृपण ह्रदय भी रंजित हो उठते हैं। उनसे नि:सृत भावों और विचारों में फैलाव और उतनी ही गहनता भी आ जाती है। वैसे भी संगीत ह्रदय में जितना गहरा उतर सकता है कुछ और नहीं।

जैसा कि पहले भी कहा गया है कि फिल्मी गीत विभिन्न स्थितियों और भावों के आधार पर निर्मित होते हैं तो उनके ही अनुसार उनकी गीत रचना और संगीत बनाया जाता है। सुनने या देखने वाले पर उसका वैसा ही प्रभाव पड़ता है, जिसके लिए उसका निर्धारण किया गया है। यह भी देखा गया है कि चाहे फिल्मो में किसी गीत की प्रस्तुति किसी विशेष दृश्य या भाव के लिए की जाती है परन्तु कई बार उनका प्रभाव श्रोता पर उनकी अपनी मन:स्थिति के आधार पर होता है। इस प्रकार फ़िल्मी गीत विविध विषयों को लिए होते हैं और गीतकार, संगीतकार और गायक उसमें अपनी कलाकारी से जीवन्तता भर देते हैं। इन गीतों में मौसम, त्यौहार, उत्सव, जीवनयापन, सुख, दुःख आदि विषयों पर आधारित विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। इनमें वे गीत विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिनका प्रभाव ह्रदय को एक ओर उल्लसित और उमंग से भर देने वाला होता है तो दूसरी ओर व्याकुलता और बेचैनी की उत्कटता भी इनसे महसूस किया जा सकता है। ऐसे गीत अक्सर वर्षा ऋतु या सावन पर आधारित होते हैं। भीषण गरमी के बाद आसमान में घिर आये काले-काले बादल और फिर उनसे बरसती रिमझिम फुहारे कवियों और कलाकारों के ह्रदय का प्रिय विषय बन कर उनके अभिव्यंजित रूप में कलाकृतियों और रचनाओं को सराबोर करता है तो फिल्मी गीत इससे कैसे अछूते रह पाते।[13,14]

सबसे पहले सावन और वर्षा ऋतु पर आधारित गीत 1944 में आई फिल्म 'रतन' में नौशाद के निर्देशन में बने इस गीत के माध्यम से गाये गए जिसे आवाज़ दी थी ज़ोहराबाई अम्बाले वाली ने और जिसे दीनानाथ मधोक ने लिखा था। यह नौशाद साहब का पहला सुपरहिट गीत भी माना जाता है।

"रुमझुम बरसे बदरवा मस्त हवाएं आई
पिया घर आजा, आजा ओ मोरे राजा
सावन कैसे बीते रे, मैं यहाँ तुम कहाँ
हमको नींद न आये रे याद सताए तेरी" (गीतकार: दीनानाथ मधोक, पत्रिका.कॉम)

हिन्दी सिनेमा के इतिहास के चालीस और पचास के दशक को सुनहरा दौर माना जाता है। फिल्म की पटकथा, गीत, संगीत अभिनय सभी स्तरों पर कलाभिव्यक्ति के उच्चस्तरीय मानदंड स्थापित हुए और इसलिए आज भी इन फिल्मो की रवानगी ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसी समय में इतने सुरीले गीतों की रचना हुई कि वह व्यक्ति जिसे संगीत की ज़रा भी जानकारी नहीं है उसका भी इन गीतों से लगाव हो जाता है। उर्दू और हिन्दी शायरी के बेहतरीन शायरों और कवियों ने अपनी कलाभिव्यक्ति से फिल्मी गीतों की खूबसूरती

बढ़ाई। कई सुरीले और मंझे हुए संगीतकार भी उभर कर आये जिन्होंने अपनी काबिल-ए-तारीफ हुनर से शास्त्रीय संगीत, राग-रागिनियों, लोक-धुनों, आंचलिक धुनों के आधार पर सुन्दर गीतों का निर्माण किया। कुछ ने विदेशी संगीत से भी प्रेरणा ली और उसे हिंदी फिल्मो की तासीर पर उतार लिया। इन संगीतकारों ने बेहतरीन शायरी और कविता को अपने मनोहर संगीत से सजाया। इन्ही गीतों में कुछ सावन और बरसात के भाव भी बरसते हैं।

फ़िल्मी गीतों में सावन और बरसात के विविध रंग:-

आमतौर पर बरसात और सावन को एक ही माना जाता है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार ये दोनों ही शब्द एक दूसरे पर आश्रित हैं। परन्तु यदि ध्यान से समझा जाए तो दोनों ही शब्द अपने आप में एक विशेष ऋतु को तो परिभाषित करते ही हैं पर मनुष्य की मनोदशाओं और भावों की बात करे तो यह एक दूसरे से अलग अलग भी हो सकते हैं स्थितियों और वातावरण के अनुसार। जहां बरसात में वर्षा होती ही है वही सावन में कई रंग हो सकते हैं। वहाँ बारिश हो भी सकती है और नहीं भी। पर एक बात दोनों ही के लिए ख़ास है और वह यह कि एक तो इनके लिए या इनसे सम्बंधित सामान्य विचार होते हैं जैसे सावन और बरसात आनन्द और ख़ुशी का सूचक है वही व्यक्ति की अपनी मनोस्थिति और परिस्थितियाँ जब इस मौसम के सानिंध्य में आती हैं तो उनके रंग विविध होते हैं। इन गीतों में आकर्षण शक्ति उत्पन्न करने का मुख्य कार्य गीतकार करता है और उसमें लालित्य संगीत और बढ़िया गायकी से भरता है। बरसात और सावन पर आधारित विभिन्न भावों की सजीव अभिव्यक्ति गीतों में प्रस्तुत सुन्दर उपमानों और बिम्बों की सहायता से की जाती है। आज से चालीस पचास साल पहले की भावाभिव्यक्ति आज के विचारों से अलग होती है, भले ही ये गीत बरसात और सावन पर लिखे जा रहे हों। इसलिए गीतकार के लिए यह एक बड़ी चुनौती भी होती है कि कैसे प्रचलित उपमाओं से अलग नयी परिकल्पनाएं गीतों में प्रस्तुत करे। तभी एक गीत में प्रस्तुत भाव और विचार लोकप्रिय हो जाते हैं। “संगीत में विचार नहीं होता, विचार तो गीत में होते हैं, जिसमें कही गयी बात जब सुनने वाले को अपनी लगती है, जीवन का सच लगती है और दिल में उतरती है, तभी उस विचार को आदमी सुनना और गुनगुनाना चाहता है और तभी वह गीत जीवन भर उससे जुड़ा रहता है।” (हिंदी फिल्मों के गीतकार, भार्गव अनिल, पृ. 3)

जैसे ही आषाढ़ आता है, तपती गर्मी के बाद काले-काले बादल का घिरना और बूंदों का गिरना जैसे मन में नई रूमानियत को जगा देता है। आशा और उमंग का नया संचार होने लगता है। शैलेन्द्र के लिखे, गीता दत्त और मोहम्मद रफ़ी की आवाज़ और महान संगीतकार एस.डी.बर्मन के निर्देशन में बने इस खूबसूरत गीत को सुने बिना इस मौसम का आनंद अधूरा है :-

“रिमझिम के तराने लेके आई बरसात
याद आए किसी से वो पहली मुलाकात
भीगे तन-मन रस की फुहार
प्यार का संदेसा लाई बरखा बहार
भीगे तन-मन पड़े रस की फुहार
प्यार का संदेसा लेके आई बरसात”

फिल्म ‘काला बाज़ार’ के इस मधुर गीत को सुनते ही किसी मन के किसी कोने में बसी नाज़ुक सी याद ताज़ा हो जाती है। कितना सुन्दर सामंजस्य है, सामने तो बारिश की बूंदे गिर रहीं हैं और मन हसीन ख्यालों से सराबोर होता है।

विरह या वियोग :-

अब इस खूबसूरत ऋतु पर आधारित फिल्माए गये कुछ प्रचलित गीतों के विषय में प्रमुख बिन्दुओं को प्रस्तुत करते हैं। जब भी बरसात होती है तो मनोभाव अपने विकसित अवस्था में या यूं कहे कि बहुत ही उल्लसित होते हैं। इस अवस्था में अपने प्रिय से मिलने की आकांक्षा जागृत हो जाती है और यदि उनसे मुलाक़ात नहीं हो पा रही है तो कुछ ऐसे भाव बरबस ही अभिव्यक्त हो जाते हैं।

“अजहू न आये बालम सावन बीता जाए
चाँद को बदरा गरवा लगाए
और भी मेरा मन ललचाये
यार हसीन गले लग जा
मोरी उमरिया बीती जाए “ (गीतकार: हसरत जयपुरी, गीतमंजुषा.कॉम)[15,16]

1964 में निर्मित इस गीत को महमूद और शोभा खोटे पर फिल्माया गया था। यह गीत हसरत जयपुरी द्वारा लिखा गया और शंकर-जयकिशन का संगीत से सुसज्जित हुआ। इस गीत को सुनते ही सावन की अनुभूति तो होती ही है लेकिन इसका प्रभाव बिरहा का पड़ता है। शंकर-जयकिशन की जोड़ी ने इसे उप-शास्त्रीय संगीत की तर्ज़ पर संगीतबद्ध किया है जिससे इसमें तीव्र अनुभूति होती है। इस गीत के बोल को भी देखा जाए तो उसमें काव्यात्मकता की सभी विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं। शंकर-जयकिशन के सुन्दर संगीत संयोजन से इस में जीवन्तता आ गयी है। हसरत जयपुरी ने इन संगीतकारों के साथ शैलेन्द्र के साथ मिल कर बहुत उम्दा काम किया। एक अनुमान के साथ उन्होंने लगभाग 2000 गीत लिखे जिनमें उर्दू-फ़ारसी का खूबसूरत समावेश हिन्दी के साथ किया। उनके लिखे गीत कालजयी हैं। "फ़िल्मी गीतों में रूमानी गीतों की बात चले, तो सबसे पहले याद आते हैं हसरत जयपुरी, वह उम्दा शायर थे जिसे लोग 'अनादि यथार्थवादी' भी कहते हैं। अपने गीतों में मुहब्बत के अफ़सानों को दिलचस्प अंदाज़ में पेश किया।" (भार्गव अनिल, हिन्दी फिल्मों के गीतकार, पृ.112)

"रिमझिम के तराने ले के आई बरसात
याद आये किसी से वो पहली मुलाकात" (गीतकार; लिरिक्स इंडिया.कॉम)

फिल्म काला बाज़ार (1960) और एस. डी. बर्मन के संगीत निर्देशन में बने इस गीत में भी बारिश की फुहारों के साथ किसी की याद की कसक समाई हुई है जो सुनने वालों के दिल में सहज ही उतर जाती है।

इनमे से कुछ गीतों की भाव-सघनता कालिदास के मेघदूतम की पंक्तियाँ 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' का स्मरण कराती हैं। जिस प्रकार कालिदास ने बादलों से याचना की थी उसी प्रकार 1955 की फिल्म 'आज़ाद' में राजेन्द्र कृष्ण के गीत और रामचंद्र के संगीत निर्देशन तथा लता मंगेशकर की आवाज में गाये हुए इस गीत में मीना कुमारी भी बादलों से विनती करती हैं। इस गीत के साथ फिल्म की सिचुएशन और भी प्रभावशाली हो गयी है। राजेन्द्र कृष्ण इस कला में सिद्ध हस्त थे। "उनके काम करने का अंदाज़ बड़ा निराला था। संगीतकार उन्हें गीत की सिचुएशन समझाकर रिकॉर्डिंग के लिए निश्चित तारीख से दस-पन्द्रह दिन पहले गीत लिख कर देने का अनुरोध करते थे मगर राजेन्द्र इस मोहलत को यूं ही उड़ा देते और आखिरी समय में जब संगीतकार दिन-रात तकाज़े करने लगता तो कही भी बैठ कर पंद्रह-बीस मिनट एं हाथो-हाथ गीत लिख कर उसे पकड़ा देते।" (हिंदी सिनेमा के गीतकार, हमीद जावेद, पृ. 80) इन्होने सबसे अधिक सी. रामचंद्र और मदन मोहन के साथ ही किया। यह दोनों ही संगीतकार धुनें तब बनाते थे जब इन्हें पूरा गीत लिख कर दे दिया जाता था। इससे यह अंदाज़ लगाया जा सकता है उस दौर में गीत और संगीत का का बड़ा भाग राजेंद्र कृष्ण की कल्पना पर आधारित था। उनमें ज़िन्दगी को बहुत गहरे में देखने की नज़र थी और इसलिए उनके गीतों के माध्यम से जीवन दर्शन के खास आयाम अभिव्यक्त होते हैं।

"जारे जारे ओ कारी बदरिया
मत बरसो रे मेरी नगरिया
परदेस गए हैं संवरिया
काहे घिर-घिर शोर मचाये री, मोरा नरम करेजा जलाए री
मोरा मनवा जले कोई बस न चले, हाय तक-तक के सूनी डगरिया
जईयो-जईयो रे देस पिया के, कहियो दुखड़े तु मेरी जिया के
कहियो छम-छम रोये अखियाँ न सोये
खोई याद में पी की पहरिया" (गीतकार: राजेंद्र कृष्ण, यू ट्यूब:शमारू फ़िल्मी गाने)

रोमानियत:-

1960 वर्ष हिन्दी फिल्मो के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योकि कई यादगार फिल्मे इसी दौर में आई थी। एक बात और भी गौरतलब है कि इस दौर में कव्वालियों का प्रचलन भी खूब दिखायी पड़ता है। 'बरसात की रात' इस समय की महत्त्वपूर्ण फिल्म रही जिसकी कव्वालियाँ आज भी बहुत ही कर्णप्रिय लगती हैं। इन कव्वालियों की विशेषता यह है कि इनमें कव्वाली की रवानगी, शब्दों की ताज़गी और मधुर संगीत की उत्कृष्टता एक साथ दृश्य में आकर्षण, रूचि और उत्सुकता संचार करती है। बंदगी के अलावा कव्वाली मोहब्बत की उम्दा शेर-ओ-शायरी के लिए भी जानी जाती है।[17]

''गरजत बरसत सावन आयो रे

लायो न अपने संग बिछड़े बलमवा' (गीतकार: साहिर लुधियानवी, म्युसिकस मैच)

यह साहिर लुधियानवी का गीत रचना, रौशन का संगीत, सुमन कल्यानपुर और कमल बारोट की आवाज़ में बरसात के ऊपर आधारित यह बेहतरीन गीत अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है। साहिर की लेखनी में गरीब किसान, पेट की आग मिटाने के लिए अपना सर्वस्व न्योच्छावर करने वाली स्त्रियों, जिनकी वह बेहद इज्ज़त करते हैं, राजनीतिज्ञों की धूर्तता और अन्य सामाजिक मुद्दों को अधिक महत्त्व मिलता था। इनकी गुरुदत्त के साथ बनी 'प्यासा' फिल्म इस बात को सिद्ध करती है। फिर भी उनके ऐसे गीत जो रूमानियत और कोमल भावनाओं की अभिव्यंजना भी करते हैं। साहिर के पास अभिव्यक्ति की अद्भुत विविधता थी। "जीवन के विविध रंग उनके गीतों में देखने को मिलते हैं। जब कभी दर्द की पनाह ढूँढी और तन्हाई की टीस ने ज़बान मांगी तो साहिर की शायरी ने आ कर सहारा दिया..." (हिन्दी फिल्मों के गीतकार, भार्गव अनिल, पृ.166) फिल्म बरसात की रात की कव्वालियों और गीतों के प्रभावशाली गीतकार बरसात की रात के वातावरण में भरपूर रूमानियत भर देता है। इस गीत को सुनकर इस रूमानियत की जानिब से श्रोता रूहानियत मखमली जहां में अपने कदम रख देता है और उसे अहसास भी नहीं होता कि वह कहाँ है।

"ज़िंदगी भर नही भूलेगी वो, बरसात की रात
एक अनजान हसीना से मुलाक़ात की रात" (गीतकार: साहिर लुधियानवी, म्युसिक्स मैच)

बरसात के ऊपर आधारित एक और प्रचलित गीत का उल्लेख अवश्य होना चाहिए जिसमें इस गीत को पेश करने के बहुत ही ख़ास अंदाज़ के साथ इस ऋतु में उठने वाले भावों को अभिव्यक्त किया गया है। 1979 में आई फिल्म 'मंजिल' में योगेश के द्वारा लिखे गए और आर. डी. बर्मन के संगीत में तथा किशोर कुमार की आवाज़ में गाये गए इस गीत का प्रभाव बहुत ही गहरा है।

"रिमझिम गिरे सावन सुलग सुलग जाये मन
भीगे आज इस मौसम में, लगी कैसी ये लगन" (गीतकार: योगेश, म्युसिक्स मैच)

फिल्म 'जीवन-मृत्यु' और धर्मेन्द्र तथा राखी के ऊपर फिल्माया गया यह गीत प्रेमियों के दिल की तासीर को व्यक्त करता है। अपने सुन्दर जीवन की कल्पना और आशा सभी प्रेमियों में होती है। इसे व्यक्त करने के लिए सावन और वर्षा पर आधारित गीत और स्वरलहरियों से बढ़कर कोई और उपयुक्त माध्यम नही हो सकता है।

"झिलमिल सितारों का आंगन होगा
रिमझिम बरसता सावन होगा
ऐसा सुन्दर सपना अपना जीवन होगा" (गीतकार: आनन्द बक्षी, गीतमंजूषा.कॉम)

सावन पर आधारित हिंदी सिनेमा में कई गीत आये लेकिन जो सफलता और प्रसिद्धि आनंद बक्षी द्वारा लिखित, लक्ष्मीलाल-प्यारेलाल के संगीत और नूतन और सुनीलदत्त पर 1967 में बनी फिल्म 'मिलन' में फिल्माए गए इस गीत को मिली वह अपने आप में लाजवाब है। इस गीत में स्थानीय रंग देने का प्रयास सुनील दत्त के द्वारा शोर शब्द को 'सोर' कहलवाते हुए बहुत ही सादगी से किया गया है। नूतन जो, एक पढ़ी-लिखी नायिका के रूप में हैं भोले-भाले सुनील दत्त को भाषा का उचित उच्चारण करवाती हैं लेकिन सुनील दत्त के लिए वही स्थानीय उच्चारण ही प्रिय और सही भी है। इस संवाद शैली में लिखे और गाये गए गीत की मधुरता मानो उसी नाव में बहती हुई धारा के साथ चलते हुए जीवन का संग बन जाती है। इस गीत का संगीत भी बहती हुई नदी, पानी के स्वर और बारिश होने के स्वरों से युक्त होकर अपूर्व प्रभाव् को बढाता है।

"सावन का महीना पवन करे शोर
अरे बाबा, शोर नहीं, सोर, सोर
जियारारे ऐसे झूमे, जैसे बनमा नाचे मोर" (गीतकार: आनन्द बक्षी, गीतमंजूषा.कॉम)

सलिल चौधरी का बरसात पर आधारित यह गीत अपनी शब्द-रचना और संगीत से परिपूर्ण ऐसी रचना है जिसे सुन कर ऐसा लगता है मानो हम भावो के एक प्रवाह में बहते चले जा रहे हों और उस राह में बहुत ही खुशनुमा वातावरण है तथा चारों ओर से रस फुहारे हम अपर बरस रही हैं | वास्तव में संगीत ही एकमात्र ऐसा साधन है जिससे भावों का मूर्तीकरण इस प्रकार होता है कि उससे केवल हमारा अपना ही नाता होता है।[16,17]

‘’हो सजना, बरखा बहार आई
रस की फुहार लायी ,अंखियों में प्यार लायी
ऐसी रिमझिम में सजन
प्यासे-प्यासे मेरे ही नयन तेरे ही ख्वाब में खो गए
सावली सलोनी घटा जब जब छायी
अंखियों में रैना गयी, निंदिया न आई ..” (गीतकार: शैलेन्द्र, गीतामंजूषा.कॉम)

एक सुरीली सी ख्वाहिश और गीतों के साथ सावन का रिश्ता कितनी खूबसूरती से प्रेमसिक्त ह्रदय से नि:सृत होता है यह गीत उसका उम्दा उदाहरण है।

“तुम्हे गीतों में ढालूंगा, सावन को आने दो” (गीतकार: गौहर कानपुरी, कविताकोश.org)

भीगे भीगे मौसम में इंसान को सबसे अधिक याद आती है जिससे वह बहुत करीब होता है। राजेन्द्र कृष्ण के इस गीत में भी इन भावो को कुछ इस प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है।

“मेरा दिल ये पुकारे आजा,
मेरे गम के सहारे आजा
भीगा भीगा है समां
ऐसे में है तु कहाँ” (गीतकार; राजेंद्र कृष्ण, गीतमंजूषा.कॉम)

बरसात की रात की रूमानियत सबसे अधिक होती है। 40-50 के दशकों की फिल्मों के गीतों में सूक्ष्म संवेदनाओं के निदर्शन इतनी सहजता से हुए हैं कि श्रोता उनमें पूरी तरह घुल-मिल जाता है।

“इक लड़की भीगी भागी सी, सोती रातों में जागी सी
मिली इक अजनबी से, कोई आगे न पीछे, तुम ही कहो ये कोई बात है” (गीतकार: मजरुह सुल्तानपुरी, गीतमंजूषा.कॉम)

उल्लास और मस्ती :-

बारिश हो और उसमें उमंग और मस्ती न हो, ऐसा हो नही सकता। हिंदी फिल्मों में अलग-अलग सिचुएशन के अनुसार इस उल्लास का अनुभव सभी ने किया होगा। चाहे फिल्म देखते हुए या केवन सुनते हुए और उससे भी अधिक, गुनगुनाते हुए। यह भाव ही कुछ ऐसा है जिसमें सभी मगन हो जाते हैं। ऐसी ही मस्ती और चंचल भाव राजकपूर पर फिल्माए हुए गीत को सुनकर उत्पन्न होते हैं जो आज भी इतना लोकप्रिय है कि पुराने ज़माने से लेकर आज की युवा पीढ़ी जब भी अन्त्याक्षरी खेलती है तो इसे ही गाती है जब उसे ‘ड’ अक्षर से कोई गीत गाना होता है।

“डम-डम डिगा-डिगा मौसम भीगा-भीगा
बिन पिए मैं तो गिरा मैं तो गिरा
हाय अल्ला, सूरत आपकी सुभान अल्ला” (गीतकार: क़मर जलालाबादी, गीतमंजूषा.कॉम)

सन 1954 में फिल्म ‘बूट पॉलिश’ में कोरसा जेल में 10-12 कैदी, जो सभी के सभी गंजें हैं, इस गीत को कॉमेडी के स्टाइल में गाते हैं। बारिश होने की कल्पना एक फिल्मकार और गीतकार ने हल्के-फुल्के ढंग से की और मन्ना डे के स्वर में गाया गया यह गीत उनके बाकी सभी गीतों की तरह हास्य रस से परिपूर्ण है। इसमें बरसात का एक अलग भाव और विचार है जो बरसात या सावन के ऊपर आधारित अन्य गीतों से इसे अलग बनाता है।

“लपक झपक तु आ रे बदरवा
सर की खेती सूख रही है
झगड़-झगड़ कर पानी ला तू
तेरे घड़े में पानी नहीं तो
पनघट से भर ला तू …बदरवा” (गीतकार: शैलेन्द्र, लिरिक्सइंडिया.नेट)

श्री 420 का यह गीत प्रेमी-प्रेमिका के हलके-फुल्के रोमांस और छेड-छाड़ को दर्शाता है। बहुत ही सहज तरीके से चाय की चुस्कियों के साथ एक ही छाते नीचे की रूमानियत इस गीत में नज़र आती हैं।[14,15]

''प्यार हुआ इकरार हुआ है, प्यार से फिर क्यों डरता है दिल

कहता है दिल, रस्ता मुश्किल, मालूम नहीं है कहाँ मंजिल" (गीतकार: शैलेन्द्र, गीतमंजूषा.कॉम)

इस गीत में बरसात का ज़िक्र न होते हुए भी बरसात के गीतों में फिल्माया गया खूबसूरत गीत है। केवल प्रभावशाली दृश्य के प्रदर्शन से ही इस गीत को आज भी बरसात में गाये जाने वाले गीतों की ही तरह से याद किया जाता है।

शकील बदायूनी के शब्द, नौशाद का संगीत और रफ़ी-लता की आवाज़ में गए हुए इस गीत से सावन ऋतु की ताज़गी और लुभावना दृश्य जिसका असर हम सबके मनोभावों पर सबसे अधिक पड़ता है। तपती गरमी के बाद जैसे ही बारिश की फुहार पड़ती है हम सबके दिलो में उमंग और आनंद भर जाता है। दिलीप कुमार और वहीदा रहमान के ऊपर फिल्माए गए इस गीत में वास्तव में सावन की ताज़गी और उमंग झलकता है।

''सावन आये या न आये
जिया जब झूमे सावन है,
तार मिले जब दिल से दिल के
वही समय मनभावन है ..." (गीतकार: शकील बदायूनी, गीतमंजूषा.कॉम)

बात हिंदी फिल्मो और सावन की हो रही हो तो 1969 में रिलीज़ हुई फिल्म 'आया सावन झूम के' के सभी गीत एक से बढ़ कर एक हैं। सावन खुशियाँ औरआनंद का मौका होता है तो चाहे मेहंदी की बात हो या झूला झूलने की, राखी की या जन्माष्टमी के उत्सव की और अब तो फ्रेंडशिप डे , सभी इसी बरसात की ऋतु में ही आतें हैं | इन सभी अवसरों पर आधारित सभी फिल्मी गीत प्रशंसनीय हैं जिनमें गीतकार आनंद बक्षी, संगीतकार लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल और रफ़ी-लता पर फिल्माए गए दो गीत बहुत ही सुन्दर हैं।

"बदरा छाये कि झूले पड़ गए
हाए कि मेले लग गए
कि आया सावन झूम के ..."
"साथिया नहीं जाना कि जी न लगे
मौसम है सुहाना कि जी न लगे
जाके फिर आवोगी, आके फिर आओगी
आने-जाने में जवानी ढल जाए न
हो... अजी छोड़ो आना-जाना कि जी न लगे" (गीतकार: आनन्द बक्षी, गीतामंजूषा.कॉम)

सलिल चौधरी अपने मधुरतम संगीत के लिए जाने जाते हैं। बरसात की ऋतु अपने साथ केवल खुशियों या आनंद का बयान नहीं करती बल्कि कभी-कभी मन के भावो का स्वच्छंद उच्छलन भी बारिश की फुहारों के साथ हो जाता है। 1956 की 'परिवार' फिल्म के शैलेन्द्र के लिखे और बिमल रॉय के निर्देशन में इस गीत को सुनना इस बात को बयाँ करता है।

"झिर-झिर-झिर-झिर बरसे हो बदरवा कारे-कारे
सोये अरमान जागे, कई तूफ़ान जागे" (गीतकार: शैलेन्द्र, लिरिक्सइंडिया.नेट)[12,13]

कभी बौराया हुआ सा मन कुछ भी स्पष्टता से समझ पाने में अवश अपनी स्थिति की तुलना बावरी घटा से करता है। रात और बात की तरह से घटा भी बावरी हो सकती है इसे इस विशिष्ट लययुक्त गीत से समझा जा सकता है।

"ओ घटा सांवरी थोड़ी थोड़ी बावरी
हो गयी है बरसात क्या
सांस है बहकी हुई
अब के बरस ये बात क्या
हर बात है बहकी हुई

अब के बरस ये बात क्या
महकी हुई ये रात क्या" (गीतकार; मजरुह सुल्तानपुरी, गीतमंजूषा.कॉम)

उप-शास्त्रीय संगीत की तर्ज़ पर भी फ़िल्मी गीत बने हैं जिनका प्रभाव विशेष प्रकार से श्रोता पर पड़ता है। इन गीतों के माध्यम से सुनने वाले का मन भी मानो कुछ ऐसे ही नृत्य करने लगता है। शास्त्रीय रागों के कारण गीत का प्रभाव और भी बढ़ जाता है। इस गीत में तबले के बोलों का सुन्दर प्रयोग मन की थिरकन को जताने के लिए किया गया है।

"नाचे मन मोरा मगन तिग दा धीगी धीगी
बदरा घिर आये, रुत है भीगी भीगी" (गीतकार: शैलेन्द्र, हिंदीलिरिक्सप्रतिक.ब्लागस्पाट.कॉम)
मस्ती और उमंग को प्रदर्शित करने वाले कई फ़िल्मी गीत ऐसे हैं जिनमें वर्षा का मानवीकरण बहुत खूबसूरती से किया गया है।
"जुल्फों की घटा लेकर, सावन की परी आई
बरसेगी तेरे दिल पर, हँस हँस के जो लहराई " (गीतकार: राजा मेहंदी अली खान, फिल्म: रेशमी रुमाल-1961)

आशा भोंसले और तलत महमूद की आवाज़ और बाबुल के संगीत में पिरोये हुए इस पूरे गीत में बारिश और इसके वातावरण की सृष्टि हुई है। 'आती हो तो आँखों में बिजली सी चमकती है, शायद ये मोहब्बत है आँखों से छलकती है।'

अमिताभ बच्चन के ऊपर फिल्माया हुआ 'नमकहलाल' का यह गीत अपनी एक अलग ही भाव-भंगिमा के साथ बिंदास अंदाज़ में प्रस्तुत हुआ जिसे काफी लोकप्रियता मिली। अमिताभ बच्चन के उस दौर का गीत है जब वे अपनी स्टारडम की बुलंदियों पर थे।

"आज रपट जाए तो हमें न उठाइयो
आज फिसल जाये तो हमें ना उठइयो
हमें जो उठइयो तो, खुद भी फिसल जइयो" (गीतकार: अनजान, हिंदीलिरिक्सप्रतिक.ब्लागस्पाट.कॉम)

ठेठ भाषा के पुट के साथ लिखे और संगीत में निबद्ध इस गीत के द्वारा बरसात का एक मस्ती और छेड़-छाड़ से भरा माहौल अनायास ही उपस्थित हो जाता है। इस गीत में फिलर संगीत का सफल प्रयोग बारिश की अनुभूति को बढ़ा देता है। गीत के शब्द अपने आप में बहुत प्रभावशाली हैं।

इन भावों के अलावा जीवन से जुड़े अन्य स्थितियाँ और भाव भी होते हैं जिनकी अभिव्यंजना बरसात और सावन पर आधारित फ़िल्मी गीतों के माध्यम से हुई हैं। सावन और बरसात के ऊपर आधारित गीत सन्दर्भ विशेष होने के साथ साथ मनुष्य के भावों के लगभग सभी रंगों को की अभिव्यक्ति में सक्षम हैं। हमारे जीवन में चलन वाले क्रिया-कलाप और मनोभाव जो विशेष रूप से इस मौसम के आने होते हो या फिर अन्य भाव, इन गीतों में उन सभी की प्रतिछवि अनायास ही दिखाई दे जाती है, जैसे फिल्म 'रुदाली' का लता मंगेशकर की आवाज़ में गाया हुआ यह गीत एक विवाहित बेटी का अपने ससुराल में सावन में आने वाले तीज त्योहारों के अवसर पर अपने मायके न जा सकने की पीड़ा को बयान करता है :-

"सुनियो जी अरज हमारी, ओ बाबुला हमार
सावन आयो घर लयी जैय्यो, भेजियो कहार" (गीतकार: गुलज़ार, लिरिक्सइंडिया.नेट)
कभी कभी बरसात के बड़े ही काल्पनिक और पर बहुत ही रोचक बिम्ब गीतकारों ने उपस्थित किये हैं | जैसे इस गीत में बरसात के उपकरणों के कितने खूबसूरत बिम्ब इस गीत में प्रस्तुत हुए हैं।
"घोड़े जैसी चाल, हाथी जैसी दुम
ओ सावन राजा, कहाँ से आये तुम....छाक धूम धूम"
"कोई लड़का है, जब वो गाता है
सावन आता है, धनक धनक धूम धूम... छाक धूम धूम" (गीतकार: आनंद बक्षी, लिरिक्सइंडिया.नेट)
बरसात के वर्णन में लोकधुनो का प्रभाव:-
फिल्मी गीतों में लोकगीतों और लोक-धुनों का बहुत ही प्रभावशाली प्रयोग हुआ है। इन लोकगीतों और धुनों की सरलता अनायास ही चित्त को अपने जैसी अनुभूतियों में भिगो देती है। इस गीत में भी सावन और मेहंदी का सुन्दर संयोजन देखते ही बनता है। उसके साथ ही

अगला गीत जो उमराव जान में फिल्माया गया है, बरबस ही दर्शकों का ध्यान लखनऊ और उसके आस-पास के प्रान्तों के प्रांगण में ले जाता है।[10,11]

“घिर आई काली घटा मतवारी
खिल गए हथेली पे मेहंदी के बूटे
सावन की आई बहार रे’ (गीतकार: योगेश प्रवीन, हिंदी.लिरिक्सग्राम.कॉम)
“झूला कीने डाला रे, अम्रैय्या” (परम्परागत)

बिरहा और घबराहट एक दूसरे में लिपटी हुई दो सहज मानवीय भावनाएं हैं जिनका अतिरेक बादल के घिर आने से बहुत अधिक बढ़ जाता है।

“घर आजा घिर आये बदरा सांवरिया
मोरा जिया धक-धक् रे चमके बिजुरिया” (गीतकार: शैलेन्द्र, लिरिक्सइंडिया.नेट)

जीवन के सर्वस्व आनंद की वास्तविकता मनुष्य की आधारभूत सुविधाओं से शुरू हो सकती है। एक आम इंसान अपने जीवनायापन के लिए जद्दोजहद करता रहता है। इस बहुत ही प्रचलित गीत को भले किसी मस्ती भरे नगमे की तरह से याद किया या गुनगुनाया जाता है, परन्तु इसकी तह में एक आम इंसान की नौकरी और उससे जुड़े हुए संघर्ष और समझौते भी महसूस किये जा सकते हैं।

“हाय हाय ये मजबूरी, ये मौसम और ये दूरी
मुझे पल-पल है तडपाये
तेरी दो टकियों की नौकरी में
मेरा लाखों का सावन जाए” (गीतकार: मलिक वर्मा, कविताकोश. ओ आर जी)

फ़िल्मी सावन के गीत और बरसात के नगमें जितने सुनते जाए उतने कम हैं। जिस बॉलीवुड को दोयम दर्जे का मान कर अक्सर नकार दिया जाता है वही अपने अंदर सृजनात्मक अभिव्यक्तियों का अथाह सागर समेटे हुए है। इससे जुड़े हुए सभी पहलू अपने आप में विशेष प्रकार के ज्ञान का समृद्ध श्रोत हैं। इस आलेख में यही प्रयास हुआ है कि इन गीतों के मूल भाव और उनके प्रस्तुतिकरण से सबंधित विशेषताओं को निर्देशित किया जाये। इस कार्य को करते हुए महत्त्वपूर्ण रोचक पक्ष भी उद्घाटित हुए होंगे, इसकी उम्मीद है।

परिणाम

अगले वर्ष भारतीय सिनेमा अपनी विकास-यात्रा के 100 वर्ष पूरे करने जा रहा है। दादासाहब फालके ने 1912 में पहली सम्पूर्ण फिल्म ‘मोहनी-भस्मासुर’ का निर्माण किया था। यह फिल्म दिसम्बर 1913 में मुम्बई के ओलंपिया थियेटर में रिलीज हुई थी।

सिनेमा परोक्ष या अपरोक्ष रूप से हमारे मनोविज्ञान को प्रभावित करता है। हमारा मनोरंजन, आचरण, रहन-सहन, फैशन भी उससे प्रभावित होता है। 1931 में फिल्म ‘आलम आरा’ से जब फिल्मों को ‘बोली’ का वरदान मिला, तो भला ‘भाषा’ कैसे पीछे रहती। हिन्दी के वर्चस्व को स्थापित करने और देश को एक सूत्र में बांधने में सिनेमा और सिनेमा के गीत-संगीत ने एक अहम भूमिका अदा की है।

‘दे दे खुदा के नाम पे बन्दे ताकत है गर देने की।
कुछ चाहे अगर तो माँग ले मुझसे हिम्मत हो गर लेने की॥’

फिल्म ‘आलम आरा’ के इस गाने को फिल्मी गानों का पितामह या जन्मदाता माना जा सकता हैं। यह गाना एक सम्मोहन, एक चमत्कार, एक अदा, एक सदा बनकर हर छोटे-बड़े के सिर चढ़कर बोला। इस गाने की कामयाबी ने फिल्म निर्माताओं को एहसास दिलवा दिया कि फिल्म के चलने में फिल्म के गाने बेहद महत्वपूर्ण हैं। अच्छे गाने लिखने वाले खोजे जाने लगे। लेकिन ज्यादातर साहित्यिक प्रतिभाएँ फिल्मों के लिये लिखने को तैयार नहीं थीं। उन्हें लगता था कि यह माध्यम उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं है। कइयों ने लिखा भी किन्तु छदम नाम से पैसों के लिये। लेकिन चालीस के दशक में कई साहित्यिक पृष्ठभूमि के लोगों ने फिल्मों में प्रवेश किया। अब तक आरजू, लखनवी, आगा हश्रकश्मीरी, और अंजुम पीलीभीति जैसे गीतकार स्थापित हो चुके थे। डी.एन मधोक, नारायणप्रसाद ‘बेताब’ , जिया सरहदी, पंडित भूषण, पंडित मधुर और ‘कवि प्रदीप’ के आगमन से फिल्मी-गायन-लेखन में एन नई ऊर्जा का संचार हुआ और फिल्मी गानों के रथ पर सवार होकर हिन्दी घर-घर पहुंचने लगी।1936 का वर्ष कई मायनों में लाजवाब उपलब्धियों का वर्ष रहा, जिसमें फिल्मकारों की रचनात्मकता में

सुघढ़ता और दर्शकों की रुचि में परिवर्तन आया। इसी वर्ष 'धूप छांव' उर्फ 'भाग्य चक्र' से फिल्मों में प्ले बैक सिंगिंग की शुरुआत हुई। और इसी के साथ फिल्मी गानों को जैसे पंख लगे। अभी तक लोगो को अपनी पसंद के फिल्मी गाने सुनने के लिये बार-बार थियेटर जाना पड़ता था। अब उन गानों के रिकॉर्ड भी बनने लगे, जिन्हें खरीद कर आप लोग बैठे-जितनी बार सुनना चाहें सुन सकते थे। 'तेरी गठरी में लागा चोर मुसाफिर जाग जरा' और 'बाबा मन की आंखे खोल' - इन दो गानों ने नेत्रहीन गायक के. सी. डे रातों को रात चमकता सितारा बना दिया। इन गानो ने रहीम और कबीर की परम्परा को आगे बढ़ाया।[11,12]

'मैं बन की चिड़िया बनके-बन बन डोलूं रे' - फिल्म 'अछूत कन्या' के इस गाने ने उसे भारत की पहली बम्पर हिट फिल्म बना दिया।

1937 में हिन्दी फिल्म संगीत ने अपने बालपन से लड़कपन में कदम रखा। भारत की सर्वोत्तम फिल्मों में कुछ का निर्माण इसी वर्ष हुआ। वी. शांताराम की 'दुनियान याने' शृंगार रस के मूर्धन्य और कृष्ण भक्त महाकवि विद्यापति की जीवनी पर आधारित 'विद्यापति' , अवैध बच्चे के लालन-पालन करने वाली औरत की कहानी- 'जागीरदार' कृषि और उद्योग के बीच टकराव की कहानी- 'धरती माता' और गलियों में गाने वाले एक गायक की कहानी- 'स्ट्रीट सिंगर' जिसका हृदय विदारक गीत 'बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाये' - आज भी इल्मी और फिल्मी गानों के माथे का तिलक बनकर चमक रहा है।

हिन्दी के विकास के साथ-साथ फिल्मी गीतों ने स्वातंत्र्य चेतना, स्वतंत्रता-आन्दोलन, जनजागृति, सामाजिक कुरीतियों के दमन, जन आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति और बदलते सामाजिक रुखों, को भी उजागर किया। इन्ही की बदौलत, आजादी की लड़ाई में गांधीजी ने हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त किया और अन्तत: उसे राष्ट्रभाषा का सम्मान मिला।प्रारम्भिक गीत-संगीत पारसी थियेटर, मराठी नाट्यशैली, पारम्परिक महाफिलों और कोठों के संगीत से प्रभावित था। लेकिन गीत बड़े ही पायेदार थे। 1939 की फिल्म 'दुश्मन' के एक गीत मे 'कोल्हू' की उपमा देखिये- 'प्रीत में जीवन जोखों जैसे कोल्हू में सरसों' । फिल्म जिन्दगी का यह गीत- 'करूँ क्या आस निरास भई' निराशा के अंधकार से निकलने की राह सुक्राता, सहगल का गाया यह गीत आने वाले युग के कई गीतों का आधार बना। मसलन- 'रात भर का है मेहमां अन्धेरा किसके रोके रुका है सवेरा' अथवा- 'किसी की मुस्कुराहटों पे हो निसार-किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार-जीना इसी का नाम है' '

1943 में आई बॉक्स-आफिस की सबसे सुपर हिट फिल्म 'किस्मत' और आया अब तक का सबसे सूपर हिट गीत:
'दूर हटो ऐ दुनिया वालो हिन्दोस्तॉ हमारा है।
हिन्दु, मुस्लिम, सिख, ईसाई सबका यहां गुजारा है॥'
कवि प्रदीप का लिखा यह गीत गांधी जी के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' की अनुगूंज बन गया। इस गीत से प्रेरित होकर कई गीतकारों ने इसी तर्ज पर कई रचनाओं की रचना की।
'आना मेरी जान, मेरी जान सन्डे के सन्डे' ….(फिल्म-शहनाई) इस गाने की लोकप्रियता ने सिद्ध कर दिया कि हिन्दी के विशाल शब्द सागर में अन्य भाषाओं के शब्दों को भी स्थान प्राप्त है। इस गाने की लोकप्रियता ने अंग्रेजी, तामिल, मराठा, बंगला और पंजाबी आदि भाषाओं के चुनिन्दा शब्दों के लिये हिन्दी ने अपने द्वार खोल दिये:
' 'गुत्तुकुड़ी कवाड़ी हड़ा' ' … लारा लप्पा लारा लप्पा लिइ रखदा' ' …
' 'इल्लू इल्लू' ' … 'हाय हुक्कु हाय हुक्कु' ' … ' 'धितंग धितंग बोले' ' …जैसे अनेकानेक शब्द और भाव हिन्दी के विशाल सागर मे समा गये…और हिन्दी और भी स्वीकार्य भाषा के रूप में उभरी।
फिर आया वो दौर जब देश भक्ति का स्थान राष्ट्रवाद ने ले लिया और पिघला हुआ सीसा बनकर भारतीय नौजवानों के खून में दौड़ने लगा-
' 'वतन की राह में वतन के नौजवॉ शहीद हों।
पुकारते है ये जमीं ये आस मां शहीद हो॥' '
और फिर आई आजादी-लोग खुशियों के बताशे बांटते हुए देने लगे एक-दूसरे को दिलासा-
' 'अब डरने की कोई बात नहीं-अंग्रेजी छोरा चला गया वो गोरा-गोरा चला गया' '
बापू के नेतृत्व में मिती आजादी के लिये सारा देश इस गीत का सहारा लेकर उन्हे धन्यवाद देने लगा-
' 'दे दी हमे आजादी बिना खड़ग बिना ढ़ाल।
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल॥' '
भारत विभाजन के बाद फिल्म संगीत के जुड़ी कई हस्तियां पाकिस्तान पलायन कर गई। इनमें से कुछ थी- आरजू लखनवी, फैयाज हाशमी, जोश मलीहाबादी, नक्शब नाजिम पानीपती, वली साहब, वहजाद लखनवी। पर बँटवारे के इस अभिशाप में एक वरदान भी छिपा था। इस दौर में कई ऐसे संगीतकार और गीतकार उभरे जो फिल्म-संगीत को उसके स्वर्णिम युग की ओर ले गये। संगीतकारों में शंकर जयकिशन, एस. डी. वर्मन, रोशन, मदन मोहन, खैय्याम और गीतकारों में शैलेन्द्र, हसरत जयपुरी, शकील बदायूॅनी, पंडित नरेन्द्र शर्मा, मजरूह

सुल्तानपुरी, भरत व्यास, इन्दीवराजेन्द्र कृष्ण, राजा मेहदी अली खान, और साहिर लुधियानवी जैसे प्रतिभाशाली गीतकारों का उदय हुआ। काव्यात्मकता और भावनात्मकता इस दौर के गानों की बुनियाद बनी, जिसने गैर भाषी लोगों को भी हिन्दी से जोड़ दिया। 'मेरा जूता है जापानी' और 'आवारा हूँ…' जैसे गीत सरहदों को तोड़कर विदेशों मे भी हिन्दी के डंके बजाने लगे।[9,10]

इसके बाद वाली पीढ़ी में कई इल्मी शायरों और कवियों का फिल्मी दुनिया में प्रवेश हुआ। असद भोपाली, गुलशन बावरा, कैफी आजमी, खुमार, नक्श लायलपुरी, कमर जलालावादी एस. एच. बिहारी और आनन्द बक्शी जैसे शायरों और गीतकारों ने हिन्दी, उर्दू और पंजाबी भाषाओं के मिलन से कई नये शब्दों को गढ़ा…अलंकारों की नई दुनिया ईजाद की, हिन्दी साहित्य में उपलब्ध हर- रस का अपने अपने अंदाज में प्रयोग किया। 'बोली जाने वाली हिन्दी' इनके गानों के जरिये हर गली-कूचे मे पहुंचने लगी। हिन्दी का रहस्यवाद भी अब फिल्मी गानों के कैनवास पर अपनी घटा बिखेरने लगा- ''मोरा गोरा रंग लै ले' ' ।

' 'आज सजन मोहे अंग लगलो।' '
' 'तू प्यार का सागर है।' ' ''तू छुपी है कहां।' '
आठवें दशक के आते-आते हिन्दी फिल्मी गानों का स्वर्णकाल लगभग समाप्त हो गया। गानों के भाव, काव्यात्मकता और अर्थ खोने लगे। द्वि अर्थी शब्दों की भरमार हो गई- 'एक आँख मारू तो पर्दा हट जाये- दूजी आंख मारू तो लड़की पट जाये' या 'धक्कम धक्का हुआ-प्यार पक्का हुआ' ..। लेकिन गीतों की इस फिश-मार्केट से अलग-थलग ऐसे गीतकार भी आये जिन्होंने हिन्दी फिल्मी गीतों के उच्च स्तर को बनाये रखा। देव कोहली, कुलवन्त जानी, इन्द्रजीत सिंह तुलसी, नीरज, निदा फाजली, गुलजार, योगेश और जावेद अख्तर- 'गीत गाता हूँ…मेरा जीवन कोरा कागज…स्वप्न भरे फूल से…इक प्यार का नगमा है…सीने में जलन आंखो में चुभन…जिन्दगी कैसी है पहेली हाय…जैसे कालगयी नगमें भी इसी दौर में आये।

आज के वर्तमान गीतकारों में आनन्दराज आनन्द, इब्राहीम अश्क, इरशाद कामिल, पी. के. मिश्रा, समीर, प्रसून जोशी और संजय छैल भी अच्छा काम कर रहे हैं।

मीराबाई, सूरदास, कबीर, रैदास, रहीम, कालीदास जैसे संत कवियों और मिर्जा गलिब, बहादुरशाह 'जफर' , दाग, डॉ. अल्लामा इकबाल, वाजिद अली शाह, जिगर मुरादाबादी, डॉ. राही मासूम रजा जैसे शायरों और अमृतलाल नागर, अमृता प्रीतम, भगवती चरण वर्मा, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, जैसे साहित्यकारों की रचनाओं को भी फिल्मी गीतों में स्थान मिला, जो इस बात का प्रतीक है कि फिल्मी गीतों ने, न केवल हिन्दी बल्कि हिन्दी और उर्दू के साहित्य को लोकप्रिय बनाने में भी कितना बड़ा योगदान दिया है।

सवाक फिल्मों के निर्माण से लेकर अब तक, करीब 3,000 गीतकारों ने फिल्मों मे गीत लेखन का कार्य किया। इनमें से 2,500 ऐसे है जिन्होंने 1-4 फिल्मों में लिखा या गुमनाम हैं…फिर भी हिन्दी के विकास में उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। हमारा उन्हें सलाम।

हैं सबसे मधुर वो गीत जिन्हें-हम दर्द के सुर में गाते हैं।
जब हद से गुजर जाती है खुशी, आंखों में ये आंसू आते है।
हिंदी साहित्य पर आधारित अनेक फिल्मों का निर्माण हुआ है। जहा तक अंतःसंबंधों की बात है तो हिंदी उपन्यास संम्राट प्रेमचंदजी पर अधिकाधिक फिल्मों का निर्माण हुआ है। जब बोलती फिल्मों का दौर षुरु हुआ था तब स्वयं प्रेमचंदजी ने फिल्मों की और अपना रुख बदल दिया था। प्रेमचंद की कहानी पर मोहन भावनानी ने सन् 1934 में मजदूर फिल्म बनाई। इस फिल्म में क्रांतिकारी तेवर होने के कारण अनेक जगहों पर प्रतिबंध लगाये गये। उनके ही सेवासदन पर नानूभाई ने वकील ने फिल्म बनाई । कुछ वर्श उपरांत एम.एस. सुबलक्ष्मी को नायिका बनाकर तमिल में फिल्म बनाई। सिनेमा एक बहुत सषक्त विधा है-जो स्वयं में संपूर्ण है। परंतु इसका सृजन साहित्य के समान स्वांतःसुखाय या व्यक्तिगत संतुश्टि के लिए नहीं किया जा सकता। विमल मित्र के साहब, बीबी, गुलाम के साथ परदे पर आदि उपन्यासों पर काम करना आसान नहीं था फिर भी जब इनके पात्र गुरुदत्त एवं अबरार अस्वी के द्वारा सामने आये तो उपन्यास के पात्र स्वयं जीवित होकर समाज के सामने आये।
सिनेमा की परिभाशा –
1. डॉ. रोजर्स – चलचित्र किसी क्रिया को उत्प्रेरित करने हेतु एक उत्तरोत्तर अनुक्रम में प्रक्षेपित छायाचित्रों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा विचारों के संप्रेशण का एक माध्यम है। 1
2. सत्यजित रे – एक फिल्म चित्र है, फिल्म आंदोलन है, फिल्म षब्द है, फिल्म नाटक है, फिल्म एक कहानी है, फिल्म संगीत है, फिल्म हजारों अभिव्यक्त िश्रव्य तथा दृष्य आख्यान है। 2
साहित्य और सिनेमा –

सिनेमा के जन्म से ही उसे किसी कथा की आवष्यकता थी। जो साहित्य के द्वारा पूरी हो रही है। कुछ सिनेमाओं के लिए साहित्य लेखन भी हुआ है। हिंदी का विचार करे तो अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, सेठ गोविंददास , चतुरसेन षास्त्री की रचनाओंपर भी फिल्में बनी है। फणीष्वरनाथ रेणु की कहानी मारे गए गुलफाम पर बांसु भट्टाचार्य ने तीसरी कसम फिल्म बनाई है। बासु चटर्जी ने राजेंद्र यादव के सारा आकाष उपन्यास और मन्नू भंडारी की कहानी यही सच है पर रजनीगंधा फिल्में बनाई है।[8,9] "साहित्य पढते समय हम सिर्फ मनोरंजन की उम्मीद नहीं रखते हैं पर सिनेमा देखते समय हम मनोरंजन की एक बडी उम्मीद देखते है। सिनेमा में मनोरंजन को प्राथमिकता है-सिनेमा की पहली मांग है मनोरंजन।"3 साहित्य में मानवजीवन की विभिन्न अनुभूतियों को अभिव्यक्ती दी जाती है। साहित्य तो विचारों का संवाहक होता है। समाज में मूल्यों की स्थापना या एकता स्थापित करने के लिए साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उसी प्रकार सिनेमा से भी समाज में भिन्न परिवर्तन होते हम देख रहे है। सिनेमा के अपने उद्देष्यों को लेकर समाज के सामने आता है। सिनेमा के द्वारा मनोरंजन के साथ साथ ज्ञानप्राप्ती भी होती है। इस प्रकार समाज विकास में सिनेमा एवं साहित्य दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। सिनेमा से और साहित्य से समाज, जनजीवन आदी घटकों की जानकारी आसानी से होती हे। दोनों भी समाज से जुडे है। सिनेमा समाज तक गतिषीलता से पहँचता है। आज लोगों के पास समय की कमी होने से साहित्य पढने की बजाए लोग कम से कम समय में सिनेमा देखना अधिक पसंत करते है।
कहानी के सफलता के कारण ही आज मुगल ए आजम, षिकस्त फिल्में आज भी याद की जाती है। कुछ वर्शां पूर्व एक समय ऐसा था जब निर्माताओं का एक विषिश्ट वर्ग साहित्यकारों की कहानियां और उपन्यासों पर फिल्में बनाने में लगे थे। उसी दौर में षरदचंद्र चटर्जी के 'देवदास' इस उपन्यास पर तीन बार फिल्म बनी है। बरुआ कृत तथा दूसरी विमल राॅय द्वारा निर्मित एवं संजय लीला भंसाली ने बनाई देवदास।
आर. के. नारायण के उपन्यास पर बनी फिल्म 'गाईड' है। जिसमें देवानंद और वहीदा रहमान ने अपनी अदाकारी बखूबी दर्षायी है। आचार्य चतुरसेन षास्त्री के उपन्यास पर बी.आर. फिल्मस् के अंतर्गत 'धर्मपुत्र' फिल्म बनी थी। मन्नू भंडारी की रचना पर 'रजनीगंधा' बनी थी। "
उर्दू साहित्य पर भी अनेकानेक फिल्म्ेा बनी है। लेखक मिर्जा मोहम्मद हादी रुसवा की कृति 'उमराव जान अदा' पर 1981 में मुजफर अली के निर्देषन में बनी फिल्म उमराव जान है। इस फिल्म में रेखा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। एवं अमृता प्रीतम का पंजाबी उपन्यास 'पिंजर' पर चंद्रप्रकाष दविवेदी ने हिंदी में इसी नाम से एक फिल्म बनाई है। इसमें उर्मिला मातोंडकर एवं मनोज वाजपेयी ने मुख्य भूमिका निभाई है। गोवर्धन राम त्रिपाठी के गुजराती उपन्यास सरस्वती चंद्र पर 1968 में गोविंद सरैया ने इसी नाम से फिल्म बनाई। संजय लीला बंसाली ने इसी नाम से 2013 में एक टी.वी. सीरियल का निर्माण किया है।
इस प्रकार साहित्य ओर सिनेमा का मुख्य उद्देष्य आनंद का सृजन करना है, मनोरंजन करना है। साहित्य और सिनेमा का संबंध तो मूक फिल्मों के युग से ही है। और आज तक साहित्य और सिनेमा का संबंध किसी न किसी रुप में है। साहित्यिकों के द्वारा ही स्क्रीप्त लिखे जाते थे। धिरे धिर सिनेमा का रुख थोडा बदलसा गया। पूरी तरह से व्यावसायिकता उसमें दिखने लगी। सिनेमा और साहित्य के बीच संवाद एक ऐसी प्रक्रिया है जो निरंतर चलती रहती है। लेकिन आज जो बदलाव हमारे सामने आये है उससे यही बताया जा सकता है कि दोनों माध्यमों को अपनी सृजनात्मक संभावनाओं को ध्यान रखकर एक दूसरे को साथ लेकर चलना है। आज समाज को साहित्यिक मानसिकता वाले फिल्म निर्माताओं की आवष्यकता है ताकी समाज को यथोचित दर्षन कर सके। आज भी ऐसे अनेक उपन्यास है जिनपर अगर फिल्मे बनाई जाये तो समाज निष्चित ही सही रास्ता पार कर सकता है। गिरते मूल्यों को बचाने के लिए अच्छे उपन्यासों पर काम होना आवष्यक है। विधा या कला के तौरपर साहित्य और सिनेमा अलग अलग है। मगर दोनों अगर साथ साथ सफर तय करते है तो एक दूसरे के सहायक बनेंगे। साथ ही मनुश्य की कलात्मक दृश्टि का विकास भी हो सकेगा।[7,8]

आशय

15 अगस्त का दिन हर भारतवासी के लिए खास होता है। इस दिन हम शहीदों को याद करते हुए आज़ादी का महापर्व मनाते हैं। इस दिन को भारतीय सिनेमा में भी निरंतर स्पेस मिला है।हिंदी सिनेमा में देशभक्ति की भावना से जुड़ी कई सारी फिल्में बनी। एक से बढ़कर एक गीत बनें। देश प्रेम का जज़्बा हर नागरिक में होता है। हिंदी सिनेमा ने भी आम आदमी की इस भावना को बखूबी अभिव्यक्त किया। देशभक्ति गीतों की जबरदस्त लोकप्रियता इसका जीता हुआ प्रमाण है। यह बेशक़ीमती गीत हर नागरिक के प्रेम को व्यक्त कर जाते हैं। देशभक्ति भावना के गीत हमें सराबोर कर देते हैं। ये गानें सदाबहार हैं।

प्रीत जहां की रीत सदा- मनोज कुमार की फिल्म पूरब और पश्चिम (1970) का ये गाना बताता है कि दुनिया को भारत का क्या योगदान कितना रहा है।गीतकार इंदीवर ने बड़े खूबसूरत अंदाज से स्वदेश की महानता को सामने रखा। कल्याणजी-आनंदजी की सजाई धुनों को महेंद्र कपूर ने अपनी आवाज दी थी। फिल्म विदेशों में जा बसे भारतीयों में देश प्रेम की खोज करती है। देशप्रेम से कनेक्ट करने वाली इस फिल्म को दर्शकों का खूब प्यार मिला। मनोज कुमार के निर्देशन बनने वाली हिट फिल्मों में से एक थी।

है प्रीत जहां की रीत सदा,मैं गीत वहां के गाता हूं,भारत का रहने वाला हूं,भारत की बात सुनाता हूं
ऐ मेरे प्यारे वतन ऐ मेरे बिछड़े चमन (काबुलीवाला)
देशप्रेम की भावना से ओतप्रोत यह गीत अभिनेता बलराज साहनी की फिल्म काबुलीवाला (1961) का है। इस कभी ना भूलने वाले गीत को प्रेम धवन ने अपने शब्दों से सजाया था। संगीत दिया था गाने म्यूजिकल जीनियस सलिल चौधरी ने। मन्ना डे की आवाज़ में इमोशन भरपूर था। हेमन गुप्ता के निर्देशन बनने वाली में काबुलीवाला रविंद्रनाथ टैगोर की कहानी का रूपांतरण थी।

ऐ मेरे प्यारे वतन, ऐ मेरे बिछड़े चमन,
तुझ पे दिल कुर्बान।
तू ही मेरी आरजू, तू ही मेरी आबरू
तू ही मेरी जान
तेरे दामन से जो आए उन हवाओं को सलाम।
चूम् लूं मैं उस जुबां को जिसपे आए तेरा नाम।
सबसे प्यारी सुबह तेरी सबसे रंगीं तेरी शाम
तुझपे दिल कुर्बान।
3. बॉर्डर:संदेशे आते हैं 1997
ये ऐसा गाना है जिसने भी सुना उसकी आंखें नम हो गईं। गाना निर्देशक जे पी दत्ता की जबरदस्त फिल्म बॉर्डर का है। गाने को लिखा था जीनियस जावेद अख्तर ने। संगीत था अनु मलिक का। जबकि सोनू निगम और रूप कुमार राठौर ने आवाज़ दी थी। बॉर्डर 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध पर आधारित सुपरहिट फिल्म के तौर पे याद की जाती है। यह गाना बॉर्डर एवम दूर दराज इलाके में तैनात फौजियों की भावनाओं को संवेदनशील तरीके से व्यक्त करने में सफल था। गाने की लोकप्रियता इसकी सक्षमता का दस्तावेज़ सी है।

संदेसे आते हैं
हमें तड़पाते हैं
वो चिट्ठी आती है
वो पूछे जाती है
के घर कब आओगे
लिखो कब आओगे
के तुम बिन ये घर
सूना सूना है।
4.ये देश है वीर जवानों का (नया दौर 1957)

दिलीप कुमार की यादगार फिल्म नया दौर का यह गीत काफी मकबूल हुआ। गाने को मोहम्मद रफी एवम बलबीर ने आवाज़ दी थी। लिरिकल जीनियस साहिर लुधियानवी ने इसे लिखा था। संगीत था ओपी नैयर का। देशप्रेम की जवां धड़कनों को रेखांकित करता यह गीत आज भी अपना महत्त्व बनाए हुए है।नया दौर दिलीप कुमार और वैजयंती माला के अभिनय से सजी भारतीय सिनेमा इतिहास की मकबूल फिल्म है। बी.आर. चोपड़ा के निर्देशन बनने वाली यह फिल्म बेहद कामयाब हुई। अपने ज़माने की बड़ी फिल्मों में एक थी। नया दौर में दिया गया संदेश आज भी प्रासंगिक है । बेमिसाल कथावस्तु एवम संदेश ने फिल्म को क्रांतिकारी बना दिया।मनुष्य बनाम मशीन जैसे ज्वलंत विषय को बहुत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया गया था। औद्योगिक क्रांति के परिप्रेक्ष्य में वर्ष 1957 में बनी फ़िल्म 'नया दौर' में मशीन और मनुष्य के बीच की लड़ाई और फिर मनुष्य की जीत की बात करती है।

ये देश है वीर जवानों का
अलबेलों का मस्तानो का
इस देश का यारों होय
इस देश का यारों क्या कहना
ये देश है दुनिया का गहना।
5.दिल दिया है जान भी देंगे (कर्मा 1986)

जाने माने निर्देशक सुभाष घई की फिल्म ' कर्मा' देशभक्ति गानों में बेहद मकबूल है। इसे मोहम्मद अजीज और कविता कृष्णमूर्ति ने आवाज़ दी थी। गाने के धुनों से लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल ने सजाया था। गाने को लिखा था गीतों के जादूगर आनंद बक्शी ने। दिलीप कुमार के अलावा नूतन, नसीरुद्दीन शाह, जैकी श्रॉफ, अनिल कपूर, पूनम ढिल्लों, श्रीदेवी और अनुपम खेर ने काम किया था। इस फिल्म में पहली बार दिलीप कुमार को अनुभवी अभिनेत्री नूतन के साथ देखा गया था। फिल्म सुपरहिट थी।

मेरा कर्मा तू, मेरा धर्मा तू
तेरा सबकुछ मैं, मेरा सबकुछ तू
हर करम अपना करेंगे ऐ वतन तेरे लिए
दिल दिया है, जां भी देंगे, ऐ वतन तेरे लिए
तू मेरा कर्मा, तू मेरा धर्मा, तू मेरा अभिमान है
ऐ वतन मेहबूब मेरे तुझपे दिल कुर्बान है
हम जिएंगे और मरेंगे ऐ वतन तेरे लिए
दिल दिया है, जां भी देंगे, ऐ वतन तेरे लिए।
6. ये जो देश है मेरा(स्वदेश 2004)

शाहरुख खान की फिल्म स्वदेश का ये सुंदर गीत सुखविंदर सिंह ने गाया। गाने के बोल शब्दो के जादूगर जावेद अख्तर ने लिखा है। ए आर रहमान के संगीत से सजे गीत में गजब की देशभावना है। स्वदेश में एक भारतीय नवयुवक मोहन की कहानी कहती है। मोहन भारत से सात समुद्र पार अमेरिका में रहकर पढ़ाई कर रहा है और नासा में एक प्रोजेक्ट पर काम भी कर रहा है। कई साल अमेरिका में रहने के बाद वो भारत वापिस आता है।भारत आने पे उसकी कहानी दिलचस्प मोड़ लेती है। देशभावना से जुड़ा महत्वपूर्ण संदेश फिल्म में देखने को मिलता है। जिसे दर्शकों का खूब प्यार मिला। फिल्म को अपनी विषयवस्तु के लिए कई पुरस्कार भी मिले। अभिनेता शाहरूख खान के कैरियर की जरूरी फिल्म।

ये जो देस है तेरा, स्वदेस है तेरा.. तुझे है पुकारा
ये वो बंधन है, जो कभी टूट नहीं सकता
मिट्टी की है जो खुशबू , तू कैसे भुलायेगा
तू चाहे कही जाए, तू लौट के आएगा
नई-नई राहों में दबी-दबी आहों में
खोए-खोए दिल से तेरे
कोई ये कहेगा ये जो देस है तेरा स्वदेस है तेरा
तुझे है पुकारा..।
देशभावना पर आधारित ऐसे कई गाने हैं जो मन में देशभक्ति की भावना जगा देते हैं । हिन्दी फिल्मों में देशभक्ति फिल्म के निर्माण और उनसे जुड़े गीतो का चलन चालीस के दशक से शुरू होता है। 1943 की सुपरहिट फिल्म 'किस्मत' में अपने ज़माने का एक यादगार गीत था। प्रदीप के लिखे गीत 'आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है, दूर हटो ए दुनियां वालो हिंदुस्तान हमारा है' आज भी मुड़ के देखा जा सकता है । इस गीत ने स्वतंत्रता सेनानियों को आज़ादी की राह पर बढ़ने के लिए क्या खूब प्रेरित किया था।[6,7]

निष्कर्ष

अधिकांश फिल्मी गीत जीवन के हल्के पक्ष से संबंधित होते हैं, और सामग्री और संदेश, यदि कोई हो, की तुलना में लय और धुन पर अधिक जोर दिया जाता है। फिर भी हिंदी सिनेमा के कुछ मशहूर गीतकार जैसे शैलेंद्र, साहिर लुधियानवी, नीरज, मजरूह और कैफी आजमी अपनी सोच और विचारों की गहराई के लिए जाने जाते रहे हैं। फिर हमारे पास प्रदीप भी थे जो अक्सर अपने गीतों को अपनी विशिष्ट आवाज में गाते थे। वे महान कवि थे जिनकी फिल्म माध्यम तक पहुंच ने उनके लिए यह संभव बनाया कि वे अपने दार्शनिक संदेशों को बड़ी संख्या में लोगों तक पहुंचाने के लिए महान संगीतकारों और अभिनेताओं की मदद लें।शैलेन्द्र विशेष रूप से अत्यंत सरल शब्दों में गूढ़ सत्य को व्यक्त करने की कला के उस्ताद थे। इसलिए कम उम्र में ही उनका देहांत हो गया, लेकिन उन्होंने हिंदी फिल्मी गानों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। उन्होंने सेल्युलाइड पर कविता के रूप में वर्णित एक महान फिल्म तीसरी कसम (1966) का भी निर्माण किया, जिसके गीतों ने अपनी दार्शनिक सामग्री के लिए ध्यान आकर्षित किया। इनमें से एक सजन रे झूठ मत बोलो खुदा के पास जाना है, जीवन की सबसे बुनियादी सच्चाइयों को बहुत ही सरल शब्दों में व्यक्त करने के लिए पोषित है। इस गाने को शैलेंद्र ने लिखा था। फिर इस फिल्म का दूसरा

रत्न है दुनिया बनने वाले, क्या तेरे मन में समय, तूने कहे को दुनिया बनाया। बहुत ही आग्रहपूर्ण स्वर में यह गीत भगवान से सवाल करता है कि उसने ऐसी दुनिया क्यों बनाई जिसमें वह दो व्यक्तियों को मिलाता है और प्यार करता है, केवल यह सुनिश्चित करने के लिए कि वे जल्द ही अलग तरीके से जाना होगा। यह शायद हसरत जयपुरी द्वारा लिखा गया था, हालांकि कुछ स्रोत शैलेंद्र को भी इसका श्रेय देते हैं। दोनों गाने मुकेश द्वारा गाए गए थे, शंकर जयकिशन द्वारा रचित और राज कपूर और वहीदा रहमान पर फिल्माए गए थे। फिल्मों में प्रस्थान और अलगाव के दृश्यों के लिए लिखे गए कुछ गीतों ने भी फिल्मी दर्शकों के साथ गहरा संबंध बनाया है, और कभी-कभी अंतिम विदाई गीतों के रूप में भी याद किए जाते हैं। इनमें दीवाना फिल्म (1967) के हम तो जाते अपने गांव, अपनी राम राम राम जैसे यादगार गाने शामिल हैं। इसमें भी शंकर जय किशन, मुकेश और शैलेंद्र का यही मेल नजर आता है। ममता का रहे ना रहे हम (लता जी द्वारा गाया गया) एक और यादगार गीत है जो इसी तरह की भावनाओं को जगाता है।कर चले हम फिदा जाने तन साथियॉन, अब तुम्हारे हवाले वतन साथियां अधिक स्पष्ट रूप से एक अंतिम विदाई गीत है, जो सैनिकों द्वारा अपने देश के लोगों को अपने जीवन का बलिदान करने के समय एक संदेश देने के लिए गाया जाता है। कैफ़ी आज़मी द्वारा लिखित और मदन मोहन द्वारा संगीतबद्ध इस गीत ने भारत में गहरा प्रभाव डाला। लंबे समय तक अपने गांव छोड़ने वाले लोगों पर फिल्माए गए गाने समय, वापसी के बारे में भी अनिश्चित, भविष्य के जीवन की महान अनिश्चितताओं और पीछे छूटे हुए सभी के प्यार की गहरी भावनाओं को भी जगाता है। इस विधा के दो सर्वश्रेष्ठ गीत शैलेन्द्र द्वारा लिखे गए थे। पहला ओ जाने वाले हो सके तो बहुत के आना बंदिनी फिल्म में नूतन पर फिल्माया गया है, जिसे एसडी बर्मन ने कंपोज किया है। जैसे-जैसे मुकेश का गाया गीत आगे बढ़ता है, आंसू रोक पाना मुश्किल हो जाता है -बचपन के तेरे मिल तेरे संग के सहरे, ढूंढेंगे तुझे गली-गली सब गम के मारे। . मन्ना डे द्वारा गाया गया दूसरा गीत, दो बीघा ज़मीन से है और इसे बलराज साहनी पर फिल्माया गया है - गंगा और यमुना की गहरी है धार, आगे या पीछे सबको जाना उस पार - बीज बिच्छा ले प्यार के - मौसम बीता जय - अपनी कहानी झोड़ जा, कुछ तो निशानी झोड जा, कौन कहे इस और तू फिर आए ना आए सलिल चौधरी द्वारा रचित यह भावपूर्ण गीत आपको रुला देगा।

कुछ दार्शनिक गीत दूसरों के आंसू पोंछने और व्यथित व्यक्ति के चेहरे पर मुस्कान लाने में जीवन के सार को पकड़ने की कोशिश करते हैं। शंकर जयकिशन के संगीत के साथ राज कपूर पर फिल्माए गए और अनारी (1959) के लिए लिखे गए एक गीत में शैलेंद्र खूबसूरती से कहते हैं- किसी की मुस्कान तो पे हो निसार। धर्म कर्म फिल्म का एक गीत कहता है कि आपको याद किया जाएगा कि क्या आपने जो कहा वह दूसरों के लिए खुशी लेकर आया-जग में रहेंगे प्यारे तेरे बोल। दीवाना फिल्म का एक गीत कहता है- हमारी भी जय, तुम्हारी भी जय ही-हम दोनों जीत गए, कोई नहीं हारा, जिंदगी ऐसी ही है (मुकेश द्वारा गाया गया, शैलेंद्र द्वारा लिखित, शंकर जयकिशन द्वारा रचित, राज कपूर और सायरा बानो पर फिल्माया गया। एक कैदी को रिहा कर दिया जाता है, लेकिन यह नहीं जानता कि कहां जाना है। मानव जीवन की विडम्बना और संकट को इससे बेहतर और कौन सी स्थिति बयां कर सकती है। ऐसे में गाइड (1965) का अविस्मरणीय शीर्षक गीत देव आनंद- वहां कौन है तेरा, मुसाफिर, जाएगा कहां पर फिल्माया गया है। यह शैलेन्द्र द्वारा लिखा गया था और एसडी बर्मन द्वारा रचित, वास्तव में एक महान संयोजन था। जिस गहरी आवाज में एसडी ने इसे गाया है, उसे भुलाया नहीं जा सकता।अकेलेपन और सुनसान होने की भावना पर, कैफ़ी आज़मी द्वारा लिखित अविस्मरणीय गीत, एसडी द्वारा रचित और कागज़ के फूल (1965) में गुरु दत्त पर फिल्माया गया अविस्मरणीय गीत शायद ही कभी हो सकता है -देखी ज़माने की यारी, बिचरे सभी बारी-बारी। इस विषय पर एक और गीत अक्सर गुनगुनाया जाता है, वह है प्रदीप का गाना- तूत गई है माला मोती बिखर गए, दो दिन रह कर साथ जाने किधर गए।

निराशा और आशाओं के मरने की भावनाओं को बहुत ही यादगार तरीके से नीरज द्वारा लिखे गए एक गीत में कैद किया गया है, रोशन द्वारा रचित और फिल्म नई उमर की नई फसल (1965) में राजीव पर फिल्माया गया है-स्वप्न झरे फूल से, मिलिए चुभे शूल से, -कारवां गुजर गया, गुबर देखते रहे इस गीत में कई सन्दर्भ बिंदु हैं और एक बेहतर दुनिया और राष्ट्र बनाने के खोए हुए अवसरों के संदर्भ में भी इसका इस्तेमाल किया गया है। इसकी शायरी, जिस तरह से शब्दों को आपस में पिरोया गया है, बेहद शानदार है और नीरज जहां भी जाते, दर्शकों की ओर से इसे सुनाने की डिमांड होती थी। मोहम्मद रफी की भावपूर्ण आवाज ने फिल्म संस्करण में इस महान गीत के प्रभाव को और बढ़ा दिया है। दिलीप कुमार पर फिल्माया गया एक और गाना जो हुआ उसका गहरा अफसोस करता है लेकिन यह भी कहता है कि जो कुछ हुआ उससे सीखने के लिए बहुत कुछ है। इस गाने को रफी ने गाया है आज पुरानी राहों से कोई मुझे आवाज ने दे।रफी का एक और गाना जिसे हम कभी नहीं भूल सकते हैं ये दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है। साहिर लुधियानवी द्वारा लिखित और एसडी द्वारा रचित, आदर्शवादी इंसान का यह अंतिम गीत जोर से घोषणा करता है - इस संकीर्ण स्वार्थी दुनिया द्वारा परिभाषित सफलता और प्रसिद्धि इतनी खोखली है कि मुझे यह प्रसिद्धि नहीं चाहिए, मैं इस सफलता को अस्वीकार करता हूं। यह गाना गुरु दत्त पर उनकी सबसे यादगार फिल्म प्यासा (1957) में फिल्माया गया था।एक और महान साहिर गीत जिसे हम यहां आसानी से नहीं भूल सकते हैं, वह इस दुनिया में महिलाओं के गहरे अन्याय पर आधारित उनका महान गीत है- औरत ने जनम दिया मर्दों को, मर्दों ने उसे बाजार दिया, जब जी चाहा मचला जब जी चाहा दूतकर दिया । यह लता जी द्वारा गाया गया था, जिसे दत्ता नाइक ने फिल्म साधना (1958) के लिए संगीतबद्ध किया था और इसे वैजयंतीमाला पर फिल्माया गया था।

मजरूह सुल्तानपुरी ने दोस्ती (1964) के लिए दो गाने लिखे-जाने वालों जरा मुर के देखो मुझे और राही मनवा दुख की चिंता क्यों सती है दुख तो अपना साथी है। हालाँकि इस फिल्म के सभी गाने बहुत अच्छे हैं, लेकिन रफी साहब के गाए ये दोनों गीत विशेष रूप से याद किए जाएंगे, जब भी खुद को यह याद दिलाने की आवश्यकता होगी कि हमें गरीबों को कभी नहीं भूलना चाहिए (यह फिल्म दो किशोरों के बारे में है - बहुत करीबी दोस्त, प्रभावित विकलांगता और बेघर द्वारा)। अपनी पहली फिल्म में लक्ष्मीकांत प्यारेलाल द्वारा रचित ये गीत, सुधीर कुमार और सुशील कुमार पर फिल्माए गए हैं, उनकी पहली फिल्म भूमिका में भी)। आनंद (1971) में योगेश द्वारा लिखे गए दो यादगार दार्शनिक गीत थे- जिंदगी कैसी है पहेली (मन्ना डे) और कहीं दूर जब दिन ढल जाए (मुकेश)। सलिल द्वारा रचित, इन गीतों को राजेश खन्ना पर एक मरणासन्न रोगी की भूमिका में फिल्माया गया था और विचारशील, संवेदनशील लोगों द्वारा बहुत सराहा गया था।सर्कस की पृष्ठभूमि के साथ, मेरा नाम जोकर के पास जीवन के दार्शनिक पहलुओं के बारे में कहने के लिए बहुत कुछ था और दो गीतों ने इसे विशेष रूप से अच्छी तरह से चित्रित किया। जीना यहां मरना यहां (मुकेश द्वारा गाया गया) शैलेंद्र द्वारा लिखा गया था और ऐ भाई जरा देख के चलो (मन्ना डे) नीरज द्वारा लिखा गया था। नदियाँ और अन्य जल निकाय अक्सर हमें जीवन के गहरे पहलुओं के बारे में सोचने पर मजबूर करते हैं। यह काबुलीवाला (1961) में हेमंत कुमार द्वारा गाए गए और सलिल चौधरी द्वारा रचित गीत गंगा आए कहां से, गंगा जाए कहां रे में स्पष्ट रूप से सामने आता है। यह समानता और सद्भाव का संदेश देने के लिए एक रूपक के रूप में पवित्र नदी का उपयोग करता है जिसके लिए सभी लोग समान हैं। अनोखी रात (1968) के एक अन्य महान गीत में संजीव कुमार पर फिल्माया गया और मुकेश द्वारा गाया गया, नदी, झील, समुद्र और अन्य प्राकृतिक घटनाओं का उपयोग अनिश्चितताओं और जीवन के अन्य पहलुओं पर चर्चा करने के लिए किया जाता है। यह इन्दीवर द्वारा लिखा गया था और रोशन द्वारा रचित था।[1,2][18]

संदर्भ

1. "बायकॉट बॉलीवुड पर अक्षय कुमार ने तोड़ी चुप्पी, बोले- 'भारत की अर्थव्यवस्था का हो रहा है भारी नुकसान'".
2. ↑ "Boycott 83: सोशल मीडिया पर ट्रेंड हो रहा 'बॉयकॉट 83', जानिए यूजर्स क्यों फिल्म न देखने की कर रहे हैं अपील".
3. ↑ "वाराणसी में 'लाल सिंह चड्ढा' के खिलाफ हुआ विरोध प्रदर्शन, फिल्म का बहिष्कार करने की उठी मांग".
4. ↑ "बहिष्कार का खेल हुआ मजबूत? 'लाल सिंह चड्ढा' के बाद 'पठान' को लगी नाराजगी".
5. ↑ "Bollywood का इस्लामिक एजेंडा".
6. ↑ "Avijit Mukul Kishore". Vimeo (अंग्रेज़ी में). अभिगमन तिथि 2022-11-23.
7. ↑ "Avijit Mukul Kishore". Vimeo (अंग्रेज़ी में). अभिगमन तिथि 2022-11-23.
8. ↑ "द थर्ड आई - ज्ञान की दुनिया, नारीवादी नज़र से | निरंतर ट्रस्ट की प्रस्तुति". द थर्ड आई (अंग्रेज़ी में). अभिगमन तिथि 2022-11-23.
9. ↑ टीम, द थर्ड आई (2021-11-03). "फिल्मी शहर एपिसोड 1: छोटा शहर". द थर्ड आई (अंग्रेज़ी में). अभिगमन तिथि 2022-11-23.
10. ↑ टीम, द थर्ड आई (2022-03-11). "फिल्मी शहर एपिसोड 2: जाति और सिनेमा". द थर्ड आई (अंग्रेज़ी में). अभिगमन तिथि 2022-11-23.
11. ↑ टीम, द थर्ड आई (2022-07-13). "फिल्मी शहर एपिसोड 3: सिनेमा में समलैंगिकता". द थर्ड आई (अंग्रेज़ी में). अभिगमन तिथि 2022-11-23.
12. जावेद हमीद, हिन्दी सिनेमा के सदाबहार संगीतकार, 2019, अतुल्य पब्लिकेशन,दिल्ली -110093
13. अनिल भार्गव, हिन्दी फिल्मों के गीतकार, 2017, अरुशी भार्गव, जयपुर -302021
14. जावेद हमीद, हिन्दी सिनेमा के गीतकार, 2019, अतुल्य पब्लिकेशन दिल्ली -110093
15. पुष्पेश पन्त, हिन्दी फिल्मी गीत: साहित्य, स्वर और गीत, भारतदर्शन
16. संगीत और मनोविज्ञान, शोधगंगा
17. इलेक्ट्रोनिक मीडिया एवं सूचना प्रौद्यौगिकी, डॉ. यू.सी. गूप्ता, पृ. 88 वही, पृ. 88
18. हंस – फरवरी 2013, संपादक- राजेंद्र यादव, पृ.118

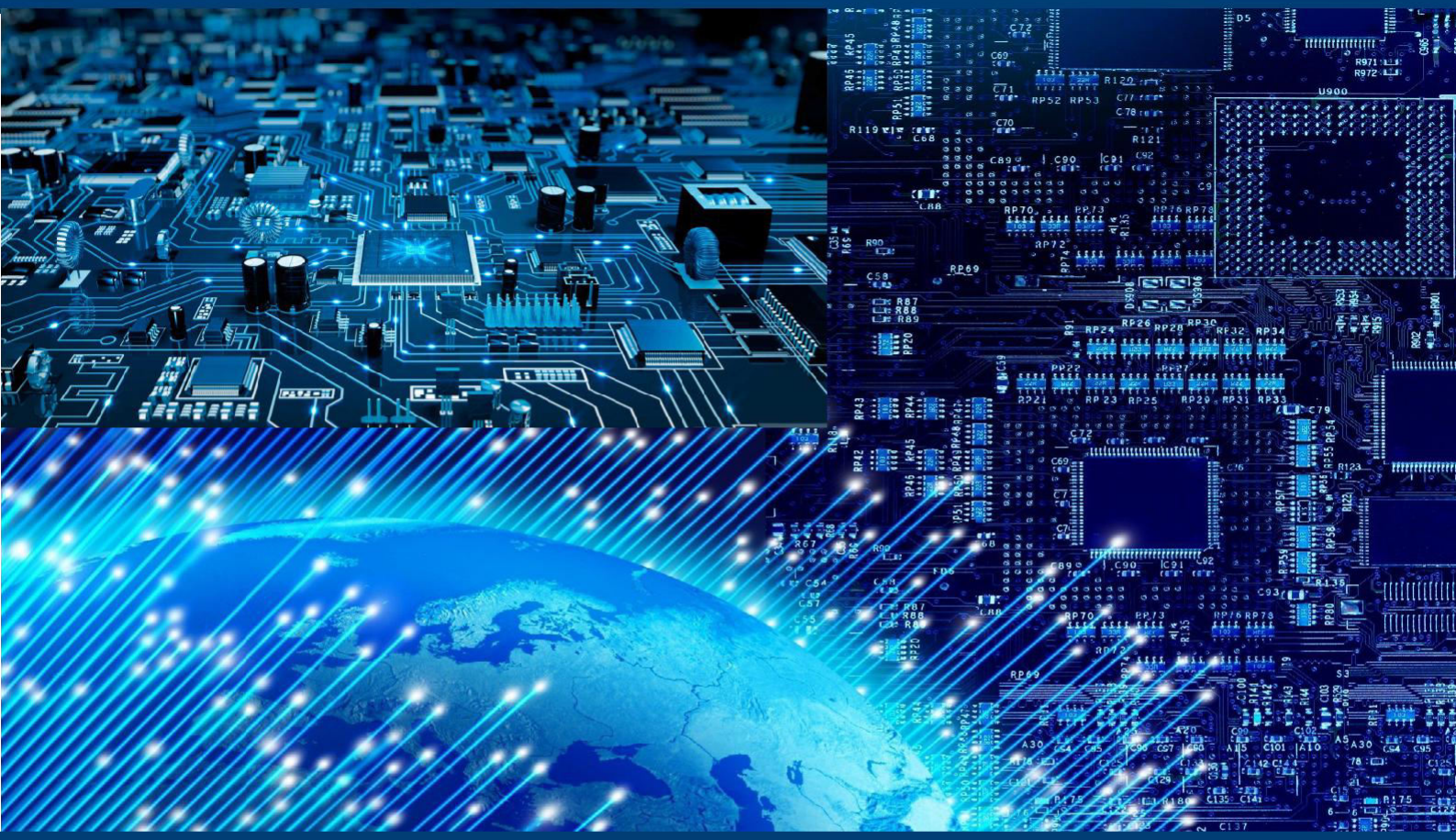

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| Mobile No: +91-9940572462 | Whatsapp: +91-9940572462 | ijarasem@gmail.com |